86
Dec

मानव मन्दिर

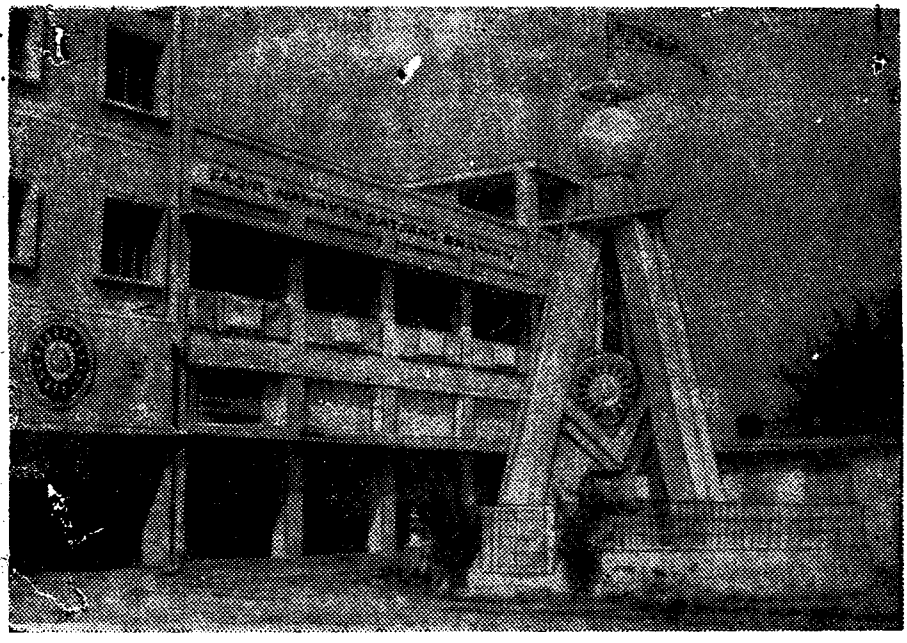

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of Publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir. Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir of partners of shareholders, holding more than one Percent of the total capital	- Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated :

Signature of Publisher

Printed and Published by: Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press. Manavta Mandir Hoshirapur, for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग
21-12-86 को होगा।

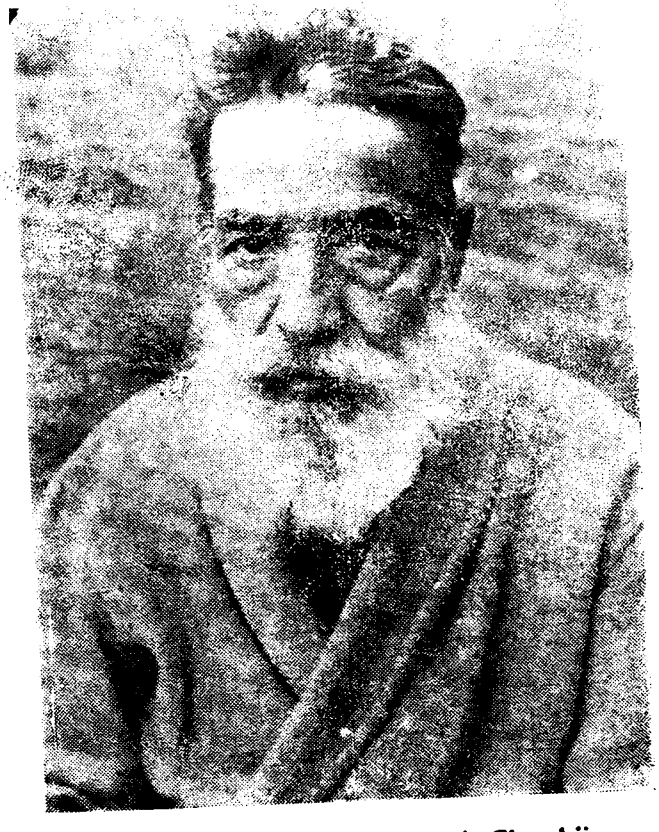

Param Sant Param Dayal Faqir Chand ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 13	बुधवार 10 दिसम्बर 1986	संख्या 8

खातिरदारी करे। तो जब कोई तुम्हारे घर में आये तो तुम भी उसके साथ अच्छा व्यवहार करो और उसकी अच्छी तरह से खातिरदारी करो यह अतिथि ऋण है। अगर मकान में वृक्ष लगाते हो और पशु रखते हो तो उनकी खुराक का पूरा प्रबन्ध करो यह वृक्ष और पशु ऋण हैं। तुम चाहते हो कि तुम्हारा पड़ोसी प्रेम से रहे, अपना मकान साफ-सुथरा रखे और उसमें कोई शोर-शराबा न हो तो फिर तुम्हारा भी यह कर्त्तव्य है कि तुम भी उसी तरह उसका ध्यान रखो यह पड़ोसी का ऋण है।

अगर तुम किसी से सहायता के इच्छुक हो तो तुमको भी दूसरों की सहायता करनी चाहिए। सभी मनुष्य आपसी सम्बन्धों से एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं इसलिए जिस व्यवहार की तुम दूसरों से इच्छा करते हो तुम भी उनके साथ वैसा ही व्यवहार करो :—

'अन्त भले का भला अन्त बुरे का बुरा।'

जो आदमी यह कहता है कि मैं दूसरों के साथ नेकी करता हूँ और वे मेरे साथ बदी करते हैं वास्तव में वह हद दर्ज़े का नादान है क्योंकि प्रकृति में कहीं भी ऐसी बात नहीं है कि आदमी नेकी करे और उसका फल बदी मिले। इज़्ज़त दो इज़्ज़त मिलेगी। धन दो धन मिलेगा जो दोगे वह मिलेगा। जो अपने सम्मान की संभाल आप नहीं करते उन्होंने तो पहले ही अपना सम्मान खो दिया है। अगर उनका निरादर होता है तो इसमें दूसरों का क्या कसूर। जब तुम संसार में आये हो तो लेने और देने के नियम को समझ कर अपने आप में लेने और देने की आदत डालो। वैसे भी दान देना अच्छा है। जिस घर से दान नहीं दिया जाता वह घर आज नहीं तो कल बर्बाद हो जायेगा :—

देह धरे का गुण यही, देह देह कुछ देह।
कहे कबीरा देह तू, जब लग तेरी देह ।।
देह खेह हो जायेगी; फिर कौन कहेगा देह।
निश्चै कर उपकार ही, जीवन का फल एह ।।
धन दिये धन ना घटे, नदी न घटियो नीर।
अपनी आँखों देख लो, यूं कस कहे कबीर ।।
पानी बाढ़ा कुएँ में; घर में बाढ़ा दाम ।
दोनों हाथ उलीचिये, यही स्यानो काम ।।

बादशाह और फकीर दोनों की हैसियत दान के मामले में बराबर है। दोनों ही देते हैं और लेते हैं। अगर फकीर ग़लती में पड़कर कंजूसी अख्त्यार करे तो उसके बारे यह समझना चाहिए कि वह जीते-जी अपने आपको नरक का भागी बना रहा है। अमीरी और फकीरी में अन्तर होता है। अमीरी की शान इकट्ठा करने में है और फकीरी की शान त्याग करने में :—

'साधु होय संग्रह करे, ताके मन्द हैं भाग'।

दान महासाधन है। धनदान, तनदान और मनदान ये तीनों ही योग के साधन हैं। अपने आपको अपने इष्ट के नाम पर बलिदान कर दो परन्तु बिना समझे-बूझे कोई काम न करो। जिसने अपने आपको दे दिया उसने अपनी मुसीबत भी सदा के लिए अपने सिर से टाल दी, उसके दुःखों का अन्त हो गया और मज़ेदार बात यह है कि दुःखों का भार रखता हुआ भी वह सदा सुखी रहता है। परमसन्त कबीर साहिब की वाणी है :—

शिष्य को ऐसा चाहिए गुरु को सर्बस देय।
गुरु को ऐसा चाहिए शिष्य का कछु न लेय ।।

इस दोहे के अन्दर भी देने-लेने का भाव छिपा हुआ है।

———

सत्संग परमदयाल

फ़कीर चन्द जी महाराज

पूर्ण धनी कौन ?

राज़ कुदरत को समझने के लिए आया था मैं।
कह रहा हूँ वह जो समझ चुका हूँ मैं ॥
मज़हब पन्थ, योग, विद्या के चक्कर में आ गया।
जो समझ में मेरे आया वह जगत् को कह चला ॥

आज एक दुःखी जीव का एक रजिस्ट्री पत्र आया। मेरे नाम के पहले परम पुरुष पूर्णधनी लिखा हुआ था। पढ़ा। आँखें बन्द हो गईं। दो घण्टे पश्चात् उठा हूँ।

दाता दयाल के एक लेख का स्मरण हुआ कि आगरे में शाहजहाँ के समय में कोई मौलवी थे, विद्यार्थियों को दूर की सूझी। उन्होंने उनको शहंशाह कहकर आदर सत्कार करना प्रारम्भ किया। यहाँ तक हुआ कि वह दीवाने होकर अपने आपको शहंशाह ही समझने लगे। शासन ने उनको पकड़कर कारागार में डाल दिया। पूरा स्मरण नहीं रहा।

किन्तु राधास्वामी मत में स्वामी जी महाराज को परम पुरुष पूर्णधनी कहा जाता है, कबीर मत में कबीर साहिब को भी ऐसे अलंकृत करते हैं। क्या ऐसे अलंकारों का कोई अधिकारी हो सकता है ?

यूँ तो प्राचीन काल में, प्रजा अपनी रीति के अनुसार एक राजा के पश्चात् दूसरे को गद्दी पर बैठा कर उसको पुर्वानुसार अलंकारों से सुशोभित करती थी, इसी प्रकार एक गुरु के पश्चात् दूसरे को गद्दी पर बैठाकर उसको वही पदवी दी जाती रही। किन्तु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जिनको इन शब्दों से भूषित किया जाता है वह ऐसे होते भी हैं या नहीं ? मेरा उत्तर है कि नहीं। केवल दूसरों की दृष्टि से यह पदवी, मान, प्रतिष्ठा के रूप में दी जाती है, जिस प्रकार कि प्राणी आप ही पत्थर की मूर्ति बनाकर उसको विष्णु अथवा शिव समझ कर नमस्कार करते हैं ; किन्तु परम पुरुष पूर्णधनी अवस्था है अवश्य। यह नहीं कि कोई परम पुरुष पूर्णधनी है नहीं। वह है। अब आप प्रश्न करेंगे कि वह कौन है ?

वह वही है जिसने पूर्णता का इष्ट अपने अन्दर बनाया है या एक सच्चा जिज्ञासु जो इस पूर्णता का इच्छुक है, वह पूर्ण पुरुष पूर्णधनी है। यदि वह न होता तो उसके अन्दर उस पूर्णता की इच्छा ही उत्पन्न न होती।

प्राणी के भाव-विचार में पूर्णता का संकल्प बैठ जाना ही समय पर उसको पूर्ण बना देगा। अवश्य बना देगा अवश्य बना देगा। इसलिए वास्तविक और सच्चा सेवक ही स्वामी है। प्रत्येक प्राणी पूर्णता का इष्ट स्थापित करके स्वयं पूर्ण हो जाता है। है तो प्रत्येक ही व्यक्ति पूर्ण, किन्तु साधन अनिवार्य है और वह साधन केवल पूर्णता के इष्ट से प्रेम करते रहना है। एक राजा अथवा राष्ट्रपति अपनी कुर्सी पर बैठकर राजा और राष्ट्रपति कहलाता है और वैसे ही कार्य करता है। इसी प्रकार एक अपूर्ण प्राणी अपने अन्दर अपने आप में पूर्णता का ध्यान बाँधकर या वहाँ बैठकर पूर्ण हो सकता है।

ऐ संसार के दुःखी प्राणियो ! मैं तुमको विश्वास दिलाता

हूँ कि वह पूर्णपुरुष, पूर्णधनी तुम आप हो। यह दुःख, क्लेश और आपत्ति इसी कारण आती हैं कि तुम पूर्णता की ओर आओ, अपने आप में पूर्णता का इष्ट बनाकर ठहरो और तुम स्वयं पूर्ण होकर अपने जीवन को शानदार और सुखी बनाकर व्यतीत कर सकोगे।

यही रहस्य बताने के लिए राधास्वामी दयाल सन्त कबीर, गुरु नानक, दाता दयाल, साँवलेशाह, वैष्णवों के ऋषि व अन्य महान पुरुष प्रकट होते रहे हैं।

सत्संग से रहस्य को समझो। भेद लो। अज्ञान, भ्रम, संशय, सन्देह दूर करो। सतगुरु इष्ट है पूर्णता का। जितना उससे अन्दर में प्रेम करोगे उतना ही लाभ होगा।

उस दुःखी प्राणी को उत्तर दे दिया कि तेरा दुःख अवश्य दूर होगा। विश्वास और निश्चय रख। उस परम पुरुष पूर्णधनी को अपने अन्दर समझ।

ढूंढ़ उसको अपने अन्तर वह तो तेरे पास है।
वह न हुशियारपुर में न वह रहता व्यास है॥
न आगरे है न उसका डेरा न धरन न आकाश है।
दाता कह गये वह हर प्राणी की अपनी सच्ची आस है।
सत्संग किसी कामिल का करके राज़ को लो तुम समझ।
वह यक़ीन करा देगा तुमको कि सब कुछ तुम्हारे पास है॥
अज्ञानियों और वहमियों के लिए हूँ प्रगट हुआ।
कहता हू अनुभव अपना यह अनुभव ही सुख राशि है॥
मन की चंचलताई से मित्रो! बात समझ आती नहीं।
इसको थिर करने के लिये सुमिरन, भजन अभ्यास है॥

द्वन्द्वावस्था से बचने का उपाय

जो जैसा बनने आया कुदरत में वैसा काम करता है।
तमव्वुज हस्ती हर एक वजूद को हरकत में रखता है ।।
उसी के जेर असर यह दीवाना भी काम करता है।
अनुभव जिन्दगी को वह कागज पर लिखता रहता है ।।

आज ट्रिब्यून पत्र को देख रहा था, वर्तमान रूस के विलैसटिक बम के टेस्ट व अन्य देशो वृतान्तों को पढ़ा। जन साधारण को बेचैनी, दौड़धूप और भविष्य में भय उत्पन्न करने वाली घटनाओं का दृश्य सामने आया जो कि पत्र में था :—

कोई वशर ऐसा नहीं जो संग दोष से बच सके।
अरु खारजी असरात असर करने से न रह सके ।।

इसलिए यह विचार उत्पन्न हुआ कि संसार क्या है ? संसार एक विचित्र खेल है। प्रकृति ने आश्चर्यजनक खेल खेला है :—

कोई दुःखी, कोई सुखी, कोई हँसता कोई रोवता।
कोई बासेहत, कोई रोगी, कोई आनन्द है लेवता ।।

इस द्वन्द्व जगत् के परे भी क्या कोई अवस्था है कि वह मानव जीवन इस त्रिगुणात्मक जगत् से ऊँचा होकर इस सुख, दुःख आदि से मुक्त हो सके। शास्त्रों व सन्तों ने बहुत सी बातें कही हैं :—

किसी ने भक्ति, किसी ने योग, किसी ने ध्यान, योग बतलाया
किसी ने सुरत शब्द, किसी ने ज्ञान बतलाया ।।
हमने यह कर करके सारे देखे कहूँ जो अजमाया।
आरजी यह हालतें हैं आरजी तसकीन है सबको पाया ।।
तोता को जब बिल्ली ने पकड़ा भूल गया राम नाम को।
आखिर को टैं टैं ही करता रहा जब तक प्राण न गँवाया ।।

किन्तु जब तक जीवन है प्राणी अपनी प्रकृति से विवश है कि वह दौड़धूप करे। इस दौड़धूप की जड़ में यदि कोई वस्तु कार्य करती है तो वह है वासना, इच्छा, आशा। उसका सम्बन्ध संकल्प से है। यह सत्य है कि संकल्प से परे भी कोई अवस्था है वह है प्रकाश का मण्डल। औरों के विषय में नहीं कह सकता हूँ किन्तु अपना अनुभव वर्णन करता हूँ कि अत्यन्त अभ्यासी होते हुए भी चौबीस घण्टे मेरे लिए इस अवस्था अर्थात् शब्द और प्रकाश के मण्डल में रहना कठिन है। हाँ! वहाँ रहने का प्रभाव अवश्य इस शरीर और मनके जगत् में आनन्ददायक रहता है, किन्तु जब बाह्य प्रभाव पड़ते हैं तो वृत्ति सोचने और समझने के लिए विवश हो जाती है।

इस पत्रिका के लेखों ने विवश किया कि सोचूं कि क्या कोई उपाय इस वर्तमान युग की भयंकर परिस्थितियों से बचने का है अथवा नहीं। मेरे विचार में पहला उपाय यह है :—

मौज का ले आसरा वही इस खौफ से बचा सकता है।
मगर मौज का आसरा लेना भी नहीं कोई सस्ता है॥
काफी हो सत्संग नर को और मौज वालों से प्यार हो।
तब शायद ही कोई मौज के आधार पर रह सकता है॥

इस मौज पर केवल सच्चे साधु, महात्मा अथवा सन्त आदि ही रह सकते हैं।

यद्यपि यह मौज का विचार ठीक है किन्तु है केवल निबल, अबल और अज्ञानी जीवों को साहस अथवा शान्ति देने के लिए।

जिसमें शारीरिक और मानसिक बल है, संकल्प शक्ति है अथवा उपाय और विधि की शक्ति रखते हैं वह मौज आधीन रहने के नियम के अनुकूल नहीं चल सकते हैं, जब

तक कि वह निबल, अबल और बेबस न हो जायें। यह मौज आधीन रहना मानव जीवन की अन्तिम बेबसी की दशा को संतोष दिलाता है।

मानव जीवन प्रारम्भ में निबल, अबल और अज्ञानी होता है और अपना बल और समझ जो जीवन की दौड़-धूप में प्राप्त होते हैं वह समय के पश्चात् बदल जाते हैं। पहले भी वह जीवन न था और फिर भी वह जीवन न रहेगा। जो वस्तु अजर, अमर, अविनाशी है वह निज अवस्था है। वह शब्द और प्रकाश है उससे भी परे एक आधार मात्र है जिसके सम्बन्ध में मन, बुद्धि और विचार वर्णन नहीं कर सकते अर्थात् मूक हैं।

ऋषियों ने और मेरे अनुभव ने सिद्ध किया है कि चूंकि शब्द और प्रकाश इस रचना का उत्पादक है इसलिए यदि हम किसी वासना को लेकर अपने अन्दर प्रकाश और शब्द में लय हों तो वह इस प्रकाश और शब्द के परमाणुओं में परिवर्तन उत्पन्न कर सकता है और फिर उसका प्रभाव इस लोक में परिवर्तन ला सकता है। जिस प्रकार विशेष प्रकार का तत्त्व यदि वायु में सम्मिलित कर दिया जावे तो उस वायु का प्रभाव प्रतिकूल होगा।

सम्भवतः इसी अनुभव के आधार पर ऋषियों ने यज्ञ आदि की प्रथा प्रचलित की हो मगर उस वास्तविकता से अनभिज्ञ होने के कारण वाह्य यज्ञ जो ब्राह्मण करते हैं उसको इस रूप में प्राणियों ने समझा हो। यज्ञ में हवनकुंड में ज्वाला को प्रज्वलित करके आहुतियाँ दी जाती हैं।

ऐसे यज्ञ का कोई न कोई आशय होता है। इन यज्ञों में वेद मन्त्र स्वर अलाप करके आहुतियाँ दी जाती हैं। अन्तरीय यज्ञ में प्राणी की सम्पूर्ण वृत्तियाँ एकाग्र होकर शब्द सुनती हुई अपने अन्दर प्रकाश में अपनी वासना को अन्दर

रखती हुई लय होती रहती हैं। इस निज अनुभव के आधार पर मेरे विचार में शान्ति का उपाय यही हो सकता है कि ब्राह्मण, साधु; सन्त और महात्मा अपने अन्दर संसार की शान्ति के लिए ऐसा अन्तरीय यज्ञ करते रहा करें। यह दूसरा उपाय है। इससे लाभ होना निश्चय है। तीसरा उपाय मेरी समझ में यह आया है कि देश के नेतागण अपनी बुद्धि को निर्मल करके अपने आपको निष्पक्ष बनाते हुए समझ-बूझ से कार्य लें और व्यर्थ का झगड़ा न मोल लें। स्पष्ट शब्दों में पंचशील के नियम को अपनायें। चौथा उपाय :—देश में मनुष्यता के नियमों का स्पष्ट रूप से प्रचार हो। धर्म, सम्प्रदाय अथवा हानिकारक राजनीति (Power Politics) को त्याग कर देश की उन्नति, भोजन, वस्त्र आदि के विचार को लिए हुए द्वितीय पंचवर्षीय योजना आदि को सफल बनाने का प्रयत्न करें। यदि हम यह मान लें कि जो कुछ होना है सो होना है जो किसी सीमा तक ठीक भी है तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जिन महान् पुरुषों ने यह पुकार की है कि 'होइहै वही जो राम रचि राखा' या 'कर्म गति टारें नाहिं टरै', दुःख-सुख कर्मभोग है मगर उन्होंने ही वर्णन किया है 'ब्रह्मवाक्यं जनार्दनम्'। सन्त ईश्वर, परमेश्वर के कर्त्ता होते हैं अर्थात् "सन्त बचन कोई न टारे, ईश्वर, परमेश्वर सब हारे।" मेरा जीवन इसी उधेड़-बुन में व्यतीत हुआ कि यह विपरीत बातें क्यों? इसलिए शेष जीवन के कुछ दिन इसी लगन में व्यतीत करने की चेष्टा है कि प्राणीमात्र को शान्ति मिले। "Peace to Humanity" और चाहता हूँ कि मुझे कोई आकर न मिले। 'मनुष्य बनो' कोई मेरी निजी पत्रिका नहीं है। न कोई मैंने अपने ग्रन्थ और लेखों से धन प्राप्त किया है। दाता दयाल ने आज्ञा दी थी कि शिक्षा में शरीर त्यागने

से पूर्व परिवर्तन कर जाना। जो अनुभव किया जिस बात को सच्चा माना वह कह दिया। यदि हो सका तो 'मनुष्य बनो' के लिए लेख भेजता रहूँगा अन्यथा मौज।

सन्तों का मार्ग

सन्तों का मार्ग जीवों के कल्याण के लिए होता है। बहुधा डाक्टर औषधि देता है किन्तु औषधि का नाम नहीं बतलाता। यह रीति प्राचीन काल से चली आ रही है। अब बुद्धि का युग है। बाल की खाल निकाली जाती है। बिना विश्वास हुए कोई किसी की परवाह नहीं करता, अज्ञान से विश्वास मैं कराना नहीं चाहता। मैं इसको महान् अपराध समझता हूँ। इसलिए सन्तों और पूर्णपुरुषों को प्रत्येक प्रकार से स्पष्ट शब्दों में वर्णन करने के लिए विवशता है। ऐ संसार के प्राणियो! तुम्हारा कल्याण तुम्हारी रहनी या क्रियात्मक साधन की शक्ति से होना है। जैसे जब तक हीलिंग (आरोग्य करने वाली) शक्ति रोगी में नहीं होगी उस समय तक कोई औषधि लाभप्रद नहीं हो सकती। वह रहनी और साधन तुम्हारा क्रियात्मक जीवन है। क्रियात्मक जीवन से तात्पर्य तुम्हारी अपनी मानसिक और आत्मिक शक्ति का निश्चय अथवा विश्वास या आस है और इस निश्चय, विश्वास और आस का बँधाना अथवा स्थापित करना और तुमको उस पर ठहराना यह मेरा कार्य है अथवा पूर्णपुरुषों का कार्य है बशर्तेकि तुम मेरी या उनकी वाणी को समझ सको।

मेरी वर्णनशैली, जिससे आप सच्चाई के अभ्यासी हो

सक, प्राचीनकाल के महापुरुषों से भिन्न हैं। उनकी वाणी में आप सज्जनों को अथवा जनसाधारण को विश्वास, आस या अपनी आत्मिक अवस्था या उससे भी आगे ठहराने के लिए रोचक और भयानक बातें सम्मिलित थीं। मेरी वाणी में प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में नितान्त स्पष्टता है। यह शब्द मैं अहंकार से नहीं कह रहा हूँ वरन् निज अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। इसलिए अपने मन, वचन और कर्म पर अधिकार रखो। इनमें बह मत जाओ। मन, वचन और कर्म में बहने से तात्पर्य बहिर्मुखता से है। बहिर्मुखता से तात्पर्य द्वैतपद से है। अपने मन्तव्य को पूर्णतया हृदयांकित कराने के लिए एक-दो नवीन उदाहरण आपके सम्मुख रखता हूँ। प्रथम उदाहरण :—जिस दिन मैं देहली से लौटकर आया मेरे साथ पूज्य नन्दूभाई, श्री गिरधर सिंह हैदरावाद वाले और श्री गोपालदास जी थे। मेरे मना करने के उपरान्त भी हजूर नन्दूभाई ने आग्रह किया कि वह मेरी धर्मपत्नी के, जिसको हजूर दाता दयाल ने सन् 1921 में जगत्माई का संस्कार दिया था, दर्शन करने के अभिलाषी हैं। उसी समय एक व्यक्ति सिलीगुड़ी बंगाल से उसी गाड़ी से मेरे निवास स्थान पर आया। उसने कुछ घटनाएँ वर्णन कीं। एक घटना यह थी कि वहाँ पानो की बाढ़ आ गई थी, परन्तु उस बाढ़ के आने से आठ दिन पूर्व उस व्यक्ति को मेरे रूप ने जिस पर वह विश्वास रखता था उसको बताया कि यहाँ से निकल जाओ पानी आवेगा। उसने दूसरों से कहा किन्तु सबने उसको पागल समझा। वह निकल गया। उसके चले जाने के पश्चात् एक भयंकर बाढ़ आई। अब मैं फकीरचन्द इससे नितान्त अनभिज्ञ हूँ। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मालिक या सतगुरु या और अन्य शक्ति प्रत्येक मनुष्य के अन्दर है। जितनी जिसके मन की शुद्धताई है उतना उसको

अनुभव होता है। यही बात सन्त और ऋषि कह गये कि ऐ मानव ! तुझमें सब कुछ है। केवल अपने मन को शुद्ध, पवित्र और निर्मल बना ले। इसके लिए साधन और अभ्यास है।

द्वितीय उदाहरण सुनो :—सम्पूर्ण धर्म और पन्थ अज्ञान से फैले हैं या यों समझ लो कि ये सबके सब माया और काल के अन्तर्गत हैं। झूठा प्रोपेगण्डा कराकर क्षेत्र तो बढ़ गये किन्तु जीव मन और वचन की उलझन से न निकल सके।

मैं गत वर्ष देहली गया था। वहाँ एक स्त्री को मेरे सामने लाया गया। उसने मुझसे नामदान की प्रार्थना की मैंने कहा "माई मैं गुरु अथवा नाम दाता नहीं हूँ। मेरा वचन जो मैं कहता हूँ वह गुरु है। यदि मेरे वचन के संकेत को कोई ग्रहण कर ले और अभ्यास करे तो वह सांसारिक, मानसिक और आत्मिक रूप से सुखी हो सकता है और वचन को समझने से इस आवागमन के चक्कर से दूर हो सकता है। उसने कहा कि आज 15 दिन हुए वह किसी गुरुद्वारे में कीर्तन सुन रही थी। उस समय उसकी समाधि लग गई अर्थात् शारीरिक बोधभान को भूल गई। अन्दर में क्या देखती है कि एक महात्मा मेरे रूप का अर्थात् फकीरचन्द के रूप का प्रकट हुआ और उसने उसको कहा कि मेरी शरण आ जा। आज आपको सत्संग कराते हुए उसी रूप में देखा; इसलिए मैं आपकी शरण में आई हूँ।

सुनो संसार वालो ! मैं आप्त पुरुष हूँ। संसार में मौज ने समय की आवश्यकता के अनुसार मुझे प्रकट किया है। मैं शपथपूर्वक वर्णन करता हूँ कि मैं नितान्त इस घटना से अनभिज्ञ हूँ। जब मैंने अनभिज्ञता प्रकट की तो कई मित्रों ने प्रश्न किया कि फिर यह रहस्य क्या है ? मैंने उत्तर दिया कि मेरा अनुभव है कि कोई ऐसा पुरुष अथवा स्त्री है जिसकी

यह प्रबल इच्छा है कि यह स्त्री मेरे केन्द्र में आ जाये। उसके विचार ब्रह्माण्ड में विद्यमान थे। जब यह स्त्री शरीर के बोधभान से ऊपर गई तो वह विचार जो उस पुरुष अथवा स्त्री के थे मेरे रूप में उसके अन्दर मेरा रूप धारण करके प्रकट हुए। इस नियम के अनुसार यदि कोई अपना डेरा बनाना चाहे या कोई और कार्य करना चाहे और अपनी प्रबल इच्छा या विचार को फैलाये तो समान अवस्था के मस्तिष्क उसके अन्तर्गत आ जाते हैं। इस नियम का नाम है इच्छाशक्ति अथवा फिलासफी ऑफ् थौट्स्। मैंने इसीलिए यह इच्छा की है कि प्राणीमात्र को शांति मिले। मैं यह इच्छा नहीं करता कि प्राणी मेरे क्षेत्र में आयें। किसी धार्मिक अथवा पांथिक जगत् का मैं उत्पादक नहीं हूँ। मैं उत्पादक हूँ मनुष्यता का। इसीलिए मैं निर्भय होकर कह दिया करता हूँ कि यदि किसी प्राणी को जो मेरे साथ प्रेम-प्रीति रखता है सुख, शान्ति प्रफुल्लता, अचिन्तपना, निश्चयात्मक बुद्धि नहीं मिलती है तो मैं अपराधी हूँ वह नहीं है।

इसलिए मैंने इस दशहरे के सत्संग पर पज्य नन्दूभाई, हजूर कृपाल सिंह व हजूर हरचरण सिंह को निमन्त्रण दिया था और मैं चाहता हूँ कि वह मेरे इन विचारों को और उन विचारों को जो जगत् कल्याण के नाम से समय पर प्रकाशित होंगे पढ़ें और यथार्थ रूप से संसार का कल्याण करें कि प्राणीमात्र को शान्ति मिले। 'नानक तेरे भाने सरबत का भला।' साथ ही सत्संगी अपना-अपना और अपने परिवार का भला चाहें। यदि मैं त्रुटि पर हूँ तो मेरा खण्डन करें।

तृतीय उदाहरण:—इस दशहरे के सत्संग पर मुझे स्मरण होता है कि मैंने एक सत्य उदाहरण दिया था। वह यह था कि एक सज्जन सन्त सिंह नामक हजूर दाता दयाल के शिष्य हैं। दाता के वाह्य चोला के अलोप होने पर उन्होंने

मुझे अपने अभ्यास आदि के सम्बन्ध में लिखा। मैंने उनको उचित संकेत देकर प्रातः 5 और 7 बजे के मध्य में साधन करने के लिए कहा क्योंकि मैं स्वयं उन दिनों उस समय साधन किया करता था। यह रेडियो का नियम है। साधक तो वह पहले ही से थे किन्तु छः मास के अन्तर्गत उन्होंने अधिक उन्नति की और यहाँ तक कि अन्तिम पद पर जाकर उनके अन्दर मलयगिरि अथवा चन्दन आदि की सुगन्ध आने लगी और सिर ठण्डा होने लगा। चूंकि मेरे साथ यह घटना हो चुकी थी मैंने उनको तार दिया कि अभ्यास बन्द करो और मुझे मिलो। वह फरीदकोट आये, देखा; प्रसन्न हुआ, किन्तु मैंने कहा मित्र! यह साधन अन्तिम लक्ष्य नहीं है। अभी काल और कर्म का ऋण सर पर है सांसारिक कार्य करो, ब्रह्मचर्य का पालन करो; परन्तु वह अपनी आन्तरिक उन्नति का सेहरा मेरे सर पर थोपते थे। मैंने कहा प्रियवर! जिस प्रकार के विचार, संस्कार तुमको वाणी आदि अथवा दाता दयाल की शिक्षा से तुम्हारे अन्दर अंकित हुए थे वही साधन द्वारा तुम्हारे अन्दर प्रकट हुए। वह मानते नहीं थे।

फरीदकोट के निकट एक ग्राम है उसमें एक अपराध करने वाली जाति रहती थी। उनमें से दो-तीन प्राणी सत्संगी थे। वह मुझको एक इतवार को अपने ग्राम में ऊँट पर सवार करके ले गये। वहाँ एक साठ वर्ष का उनकी जाति का बृद्ध पुरुष था। उसने मुझे बताया कि एक कबीर-पन्थी साधु ने उसको जाप के लिए एक मन्त्र बताया जिसका साधन उसने लगातार किया।

यहाँ तक उसकी अवस्था हो गई कि वह रजाई लेकर पन्द्रह दिन तक एक वृक्ष के नीचे पड़ा रहा और सुमिरन उस मन्त्र का करता रहा। रजाई के बीच में से वृक्ष और निकट का वस्तुओं को जब आँख खोलता प्रकाश रूप में पाता

था। प्रकाश अन्दर मैं अत्यन्त अधिक था। सोलह दिन जब हुए तो उसने क्या देखा कि वह एक अन्धेरे में से निकल कर एक हरे रंग के असीम समुद्र में पहुँच गया है। हरे रंग के अतिरिक्त और किसी प्रकार का प्रकाश दृष्टिगोचर नहीं होता था। वह इस दृश्य से घबरा गया और फिर साधन छोड़ दिया। उसने मुझसे प्रश्न किया कि यह कौनसी सोपान थी?

मैंने उस सन्त सिंह से कहा भाई तुम भी बड़े अभ्यासी हो इसके प्रश्न का उत्तर दो। वह न दे सके। मैं जानता था कि वास्तविकता और रहस्य क्या है। वह प्राणी नितान्त नासमझ, विवेक और ज्ञान से रहित था। मैंने कहा मित्र! तुम वह मन्त्र पढ़कर जो तुमको उस कबीरपन्थी ने दिया था, सुनाओ। मेरे विचार में उसमें "हरे" का शब्द अवश्य होगा। चूँकि तुमको हरे रंग का संस्कार है इसलिए उसी संस्कार के अनुसार तुम्हारे अन्दर जो प्रकाश तुम्हारी अपनी आत्मा का है उसमें हरापन लिये दृष्टिगोचर हुआ है, तुमको यह साधन बिना सत्संग के वह अज्ञानी साधु दे गया था। उसने मन्त्र को सुनाया उसमें क्रमशः पाँच या सात बार "हरे" का शब्द प्रयोग में आता था।

मैं अपने जीवन के अनुभव के आधार पर साहसपूर्वक और निर्भय होकर उच्च स्वर से पुकार करता हूँ कि जिस प्रकार का संस्कार, विचार अथवा टच मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रभावित होता है वही साधन में दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि सन्तों के मार्ग में सहस्रदल कमल से लेकर सोहंग पुरुष तक सम्पूर्ण सोपान काल और माया के अन्तर्गत हैं।

यदि जन साधारण इस रहस्य को जानते तो यह धार्मिक जगत् के जितने विरोध हैं वह बुद्धिमान् पुरुषों के

अन्तःकरण से दूर हो जाते। इसी कारण किसी पूर्ण पुरुष की संगत और उसके टच का संस्कार अनिवार्य है। इस कमी को देखकर मैंने उस सच्ची शिक्षा को जिसको सतपुरुष राधास्वामी दयाल, सन्त कबीर, नानक आदि अन्य पूर्णपुरुष दे गये अपनाकर, समझ कर, साधन करके, रहस्य ज्ञाता होकर उनकी शिक्षा को प्राप्त कर इस संसार में जीवों के हित के लिए प्रकट हुआ हूँ :—

सत्संग करत बहुत दिन बीते, अब तो छोड़ पुरानी बान।
कब लग करौ कुटिलता गुरु से, अब तो लो गुरु को पहचान॥

सतगुरु फकीरचन्द नहीं है वरन् उसके वचन, उसका संस्कार, उसकी स्वतन्त्रता और सत्यता का विचार है।

मुझे हर्ष है कि हजूर पूज्य हरचरन सिंह जी, पूज्य हजूर कृपाल सिंह जी और दयाल स्वरूप पूज्य नन्दूभाई जी मेरी वर्णनशैली के मन्तव्य को सत्यता से सहमत हैं, जैसा कि उनके लेख और वचनों से सिद्ध होता है। मेरे जिम्मे में सत्यता प्रकट करने का कार्य था। मुझे न तो किसी को शिष्य बनाना है न डेरा-धाम बनाना है। मुझे निबल, अबल और अज्ञानी जीवों के लिए और जगत् कल्याण के लिए कार्य करना है। वह कर चला। यदि इन महात्माओं के अन्दर कुछ और है बाहर कुछ और है तो मैं नहीं जानता। मैं किसी के सम्बन्ध में कोई सम्मति नहीं दे सकता हूँ। अपने सम्बन्ध में कह सकता हूँ कि मुझे कोई भी निज स्वार्थ इस कार्य से नहीं है और न राधास्वामी मत का ही पक्ष करता हूँ। शेष दशहरे के अवसर पर वर्णन किये गये मेरे विचारों को मासिक पत्र शिव और दयाल फकीर सत्संग सभा प्रकाशित करेगे।

अपने आपको जानो, सच्चे बनो, प्रसन्नता का जीवन व्यतीत करो, धर्म और पन्थों के जाल से निकलो।

अब रह गया प्रश्न सुरत शब्द योग का जो कि सन्तों

का मार्ग है। उसके सम्बन्ध में मैंने दशहरे के अन्तिम सत्संग में कुछ निवेदन किया था वह मुझे पूरा तो याद नहीं किन्तु—

कहता हूँ कह जात हूँ अपने जीवन का सार।
गलत सलत का पता नहीं मेरा जीवन सत्याकार॥

एक शब्द तो वह है जो वाह्य पूर्ण पुरुष का वचन है। मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, वैज्ञानिक और बुद्धिगम्य जीवन को किसी पूर्ण पुरुष के वचन से शान्ति और सुख मिलनी चाहिए। दूसरे शब्दों में भ्रम, संशय, सन्देह समाप्त होने चाहिएँ। इससे आगे अन्तरी साधन की बारी आती है। सुनो :—

यह संसार प्राकृतिक है। जहाँ तक रचना का सम्बन्ध है प्रकृति चाहे स्थूल हो, चाहे सूक्ष्म अथवा कारण, सब माया है।

गोगोचर जहां लग मन जाई। सो माया कृत जानो भाई॥

हमारी पृथ्वी यद्यपि मिट्टी तत्त्व है किन्तु यह है वास्तव में सूर्य का दूसरा रूप। इसी प्रकार जितनी भी प्रकृति कारण, सूक्ष्म अथवा स्थूल है सबकी उत्पत्ति किसी ऐसे प्रकाश और शब्द से हुई है जिसको मैंने लोक-लोकान्तर का आधार समझा है। क्या पता सन्त उसको सतपद कहते हों। शास्त्रकार सत्यम् कहते हों। मुझे नहीं पता। मेरा अनुभव है कि प्रत्येक प्रकार की स्थूल प्रकृति जिसमें हमारी समस्त रचना विद्यमान है और सूक्ष्म प्रकृति जिसमें हमारी प्रत्येक प्रकार की वासनाएँ और प्रकृति की वासनाएँ विद्यमान हैं और कारण प्रकृति जो हमारी आत्मा है सन्त या शास्त्र जिसको काल या सोहं पुरुष कहते हैं, यह निःसन्देह किसी ऐसे महान् प्रकाश से प्रकट होते हैं जो अति ही निर्मल हैं। जहाँ प्रकाश है वहाँ शब्द है इसलिए जो प्रकाश और शब्द मनुष्य अपने शारीरिक, मानसिक अथवा आत्मिक संचालन से अपने अन्दर प्रकट करता है वह और प्रभाव रखता है।

घंटा, शंख, मृदंग, सितार, सारंगी, बांसुरी अथवा मुरली आदि के शब्द सब प्रकृति के हैं और मनुष्य की अपनी मानसिक विचारधाराओं, आशाओं, भावों की एकाग्रता के परिणाम हैं। चंकि आत्मा, मन और शरीर के बोध-भान सब इस प्रकृति के संचालन से बनते हैं जिस प्रकार पृथ्वी व अन्य तारागण सूर्य के संचालन से उत्पन्न हुए। इसी प्रकार जिसको वर्तमान वैज्ञानिक अपनी युक्ति से इस स्थूल प्रकृति के एटम से करोड़गुणा अधिक प्रकाश और ताप उत्पन्न कर कर रहे हैं इसी प्रकार योगी जन अपने अन्दर अपने भावों, विचारों, आशाओं के अणु को अपने अन्दर में एकत्रित करके अपने अन्दर प्रकाश और शब्द को उत्पन्न करके अपने और दूसरों के लिए आश्चर्यजनक बातें या करामातें उत्पन्न कर सकते हैं। इसका उल्लेख हमारे प्राचीन शास्त्र करते हैं और इनको यौगिक चमत्कार भी कहते हैं, किन्तु इन साधनों से आवागमन के चक्र से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। इसालए सन्तों के मत में जिसकी मैंने परीक्षा की है सार शब्द, सार प्रकाश में लय होना है जहाँ :—

न आशा कोई न निराशा कोई, न अपना न बेगाना है।
नूर प्रकाश वहाँ पर मित्रो बहुत ही अजब सुहाना है॥
न गुरु कोई वहाँ चेला नहीं न कोई कर्त्तार सियाना है।
हस्ती आप में आप ही रहती शायद वही सत अस्थाना है॥
जो वहाँ रहता है संभवतः सन्त कोई रहता हो।
सहज आप में हस्ती रहे, न जीवन ब्रह्म निशाना है।
वाणी नहीं जो कह मैं सकूं, कर्म भोग फकीर भुगाना है॥
गुप्त रहस्य को खोल रहा न लेना है न देना है।
जो था अब तक राज़ सीना कर दिया उसको सफ़ीना है॥

यद्यपि इससे भी आगे कुछ है किन्तु कोई समझ न सकेगा इस अवस्था के प्राप्त करने के लिए ऐसे पुरुषों के

सत्संग और प्रेम की आवश्यकता है जो वहाँ रहता है।

जो नाम और धाम की आशा में हैं; जो काम और नाम की आशा में हैं उनका इष्ट या प्रेम तुमको किसी रूप में भी उस सत पद तक न ले जायेगा। मैंने इसलिए केवल वर्तमान और भविष्य में आने वाले महात्माओं को संकेत किया है :--

जीव अन्जान मरम न जाने उनको तुम वरगलाना नहीं।
दाम में अपने उनको साधुओ तुम फँसाना नहीं॥

इसलिए ऐ सच्चे जिज्ञासुओ! किसी पूर्ण पुरुष की संगत करो। तुम केवल किसी सतपुरुष के सत्संग से यदि तुमको इच्छा है तब जा सकोगे। यदि तुम में सच्चाई है, सच्ची तड़प है, तो मौज स्वयं प्रबन्ध कर देगी। सच्ची तड़प स्वयं तुमको वहाँ पहुँचा देगी। यह प्राकृतिक मार्ग है :—

प्रगटा कहने जगत् में सत्य यह नादान फकीर।
अज्ञानी जीव गालियां देवें कहे अभिमानी फकीर॥
गुरु ने हुक्म दिया था मुझको कह गये साँवलेशाह पीर।
निर्भय होकर बात कहूँ बन जिज्ञासुओं की पीर॥
मुझको पूजे कुछ न मिलेगा राज़ समझ लो वीर।
बात का समझना है गुरु धारण करना साफ कहे फकीर॥
दुःख सुख सह अपना कर्म निभाया बना धीर वीर गम्भीर॥
सही है या गलत है जाने वह आप ही सच्चा दस्तगीर॥

दाता के चरणों में प्रार्थना

तूने दिया काम तेरा है काम मेरा नहीं कुछ भी।
बुलबुला हूँ एक चेतन का मिट गई मैं और मनी॥
न करता काम बोझ सर रहता थी मेरे लिए मजबूरी।
अब दया करो बख्शो, स्वामी चरण हज़ूरी॥

———

सत्संग परमसन्त
हजूर मानव दयाल जी महाराज
मानवता मन्दिर होशियारपुर

दिनांक **21-7-86**

(गुरु पूर्णिमा के शुभावसर पर)

सन्त अवतार और सहज जीवन

भरोसा तेरा है तेरी आस मन में ।
लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में ॥
यही है जतन और यही काम मेरा ।
जपा करता हूँ रात दिन नाम तेरा ॥
तेरी मौज में रह के निस दिन सुखी हूँ ।
नहीं भय न चिन्ता न जग से दुःखी हूँ ॥
खुली आँख से तेरा दर्शन जो पाया ।
मिटे सहज में मान मद मोह माया ॥
न जोगी न साधु न ज्ञानी बना मैं ।
न भोगी असाधु न मानी बना मैं ॥
जो था पहले अब भी वही रूप मेरा ।
न व्यापा मुझे काल का हेरा फेरा ॥

न जागा न सोया न सुषुप्ति में आया ।
न आसा निरासा के भय ने सताया ।।
न दौड़ा न बैठा न लेटा कभी मैं ।
न माता पिता और न बेटा कभी मैं ।।
नहीं ब्रह्म माया का है द्वन्द मुझको ।
न उलझा सका कर्म का फन्द मुझको ।।
सहज रूप है और सहज कर्म बानी ।
सहज में सहज की सहज हो निशानी ।।
सहसदल अनेक और त्रिकुटी की त्रिपुटी ।
दशा द्वैत की सुन्न में भी न प्रगटी ।।
महासुन्न अद्वैत का भाव छूटा ।
भँवर में नहीं काल माया ने लूटा ।।
अलख हूँ अगम हूँ अनामी बना हूँ ।
कहूँ कैसे कैसा कहाँ और क्या हूँ ।।
गुरु राधास्वामी ने आकर चिताया ।
मेरा रूप मुझको सहज में लखाया ।।

नन्दितानि दिगन्तानि यस्यानन्दस्य बिन्दुना ।
पूर्णानन्दं प्रभुं वन्दे स्वानन्दैक्यस्वरूपिणम् ।।
परमतत्त्वस्य अवतारं, परमपूज्य सत्संगिनाम् ।
मानवस्य परम इष्टं, फकीरं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप सत्संगी भाइयो और बहनो, आज व्यास पूर्णिमा है । व्यास ऋषि भगवान् कृष्ण के गुरु थे । यह पता नहीं कि कहाँ रहते थे और क्या थे ? वास्तव में गुरु सर्वव्यापक होता है वह न जन्म लेता है न मरता है वह प्रकट होता है और प्रकट होकर अपनी धारा को बहाता रहता है । मालिक को मिलने के दो रास्ते हैं । एक रास्ता है पूर्णमासी और दूसरा रास्ता है अमावस्या का ।

पूर्णमासी का रास्ता गृहस्थ का है और अमावस्या का रास्ता संन्यास का है। ऋषि वेदव्यास, गुरु वसिष्ठ गृहस्थी थे। आदि काल से ऋषियों के समय से जो सद्गुरु थे वह सब गृहस्थी थे। संन्यास तो चौथी अवस्था में लिया जाता है। हमारे यहाँ चार आश्रम माने गये हैं। (1) ब्रह्मचर्य आश्रम (2) गृहस्थ आश्रम (3) वानप्रस्थ आश्रम (4) संन्यास आश्रम। आश्रम का क्या मतलब है ? आश्रम का एक मतलब तो ये है कि जहाँ पर आप बैठे हो यह आश्रम है। शहरों से दूर जंगलों में एकान्त में ऋषियों के आश्रम हुआ करते थे। इन आश्रमों में ऋषियों के पास जाकर लोग रहते थे और शिक्षा प्राप्त करते थे विशेषकर ऐसी शिक्षा प्राप्त करते थे जिससे उन्हें यह पता चल जाता था कि हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है, हम इस जगत् में क्यों आये हैं, हम कौन हैं, कहाँ से आये हैं ? इन सब बातों का पता सद्गुरु की कृपा से चलता है। हम महाराष्ट्र में अहेरी गये थे। वहाँ पर कमलेश्वर राव महाराज जी के बड़े भक्त हैं। महाराज जी उन्हें पागल कहा करते थे। वह हफ्ते में दो-तीन खत लिख दिया करते थे। अब मुझे भी लिखते हैं। अगर व्यक्ति पागल नहीं होए तो वह मालिक को प्राप्त नहीं कर सकता है। सारी दुनिया पागल है। एक बार पागलखाने में किसी ने एक पागल से पूछा "तू यहाँ कैसे आया ? पागल कहने लगा "दुनिया मुझे कहती थी कि मैं पागल हूँ मैं समझता हूँ कि दुनिया पागल है अब चूंकि उनका बहुमत था इसलिए उन्होंने मुझे पागलखाने में भेज दिया।" अब देखो सभी पागल हैं, कोई पैसे के पीछे पागल है, कोई शरीर के पीछे पागल है, कोई नाम कमाने के पीछे पागल है। बड़े-२ सन्त भी नाम कमाने के पीछे पागल हैं। पागलपन तो स्वाभाविक है। पागल किसी की नहीं सुनता अपनी धुन में रहता है। लेकिन

पागल के जरिये मालिक आपको चेतावनी देता है। सन्त भी दुनिया की बातें नहीं सुनते वह अपनी धुन में रहते हैं। मीरा बाई को भी पागल कहा गया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस को भी पागल कहा जाता था। पागलपन एक दृष्टि से तो अच्छा है। पागलपन का मतलब है एक धुन में रहना। यदि कोई व्यक्ति मालिक के पीछे पागल हो जाये दुनिया तो उसे पागल कहेगी, लेकिन जब वह मालिक के अन्दर मिल जायेगा तो वह पागल है या दुनिया पागल है यह समझने की बात है। मीरा को दुनिया ने जितना कष्ट दिया उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसके घर वालों ने कष्ट दिया। मीरा का देवर राणा था उसने मीरा को मारने के लिए ज़हर यह कहलवा कर भेजा कि यह कृष्ण का चरणामृत है। मीरा ज़हर को चरणामृत समझकर पी गई। ज़हर का अमृत हो गया। जब मीरा को बहुत अधिक परेशान किया गया तो उसने तुलसीदास जी को खत लिखा कि मुझे घर वाले तंग कर रहे हैं, मैं क्या करूँ ? यद्यपि तुलसीदास भगवान् राम को मानने वाले थे फिर भी उन्होंने मीरा को जवाब दिया :—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम
यद्यपि परम सनेही ॥

इस जवाब को पाकर मीरा ने मेवाड़ छोड़ दिया अब ज़रा सोचो, जब मीरा ने गिरिधर गोपाल की पत्थर की मूर्ति को परमतत्त्व माना और पत्थर से कृष्ण पैदा कर लिया। मीरा पत्थर की मूर्ति को परमतत्त्व मान कर कहाँ पहुँची ? जहाँ कबीर साहिब पहुँचे।

कबीर साहिब भी लहर तारा तालाब के अन्दर नूरा और लुकमान जुलाहा दम्पती को मिले थे। दोनों ने बच्चे

को घर ले जाने का फैसला किया। कबीर साहिब परमतत्त्व के अवतार थे। लोगों ने विभिन्न प्रकार की कहानियाँ बना दीं। और यह किवदन्ती चल पड़ी कि कबीर साहिब एक विधवा ब्राह्मणी के पेट से पैदा हुए थे वह समाज के डर से उन्हें तालाब के किनारे छोड़ आई थी। अक्सर लोग अच्छे और महान् व्यक्तियों को ब्राह्मण जाति के साथ जोड़ देते हैं। ब्राह्मण वो है जो ब्रह्म को जानने वाला है। चिराग़ जहाँ भी होगा वहीं रोशनी देगा चाहे वह चमार के घर हो। चाहे जुलाहे के घर हो। जुलाहे के घर में होते हुए ही उन्होंने बड़े सहज तरीके से बता दिया कि जीवन का उद्देश्य क्या है ? उन्होंने बताया—

झीनी २ बीनी चदरिया।

फिर सवाल किया—

कौन का ताना कौन की भरनी।
कौन तार से बीनी चदरिया॥

जुलाहे के घर जन्म लिया तो चदरिया से बता दिया कि तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है। एक तार को ताना जाता है और दूसरे तार से बुना जाता है। ये जो आपकी शरीररूपी चदरिया है इसको कौन से तारों से बुना है ? कबीर साहिब ने बड़ी सरल भाषा में जवाब दिया है :—

इंगला पिंगला ताना भरनी।
सुषुमन तार से बीनी चदरिया॥

इंगला, पिंगला क्या है ? इंगला है बुरे विचार, पिंगला है अच्छे विचार। अरे यह जितना भी भव जगत् है सब मन का है। यह सारा जगत् जो दिखाई देता है विराट् ने पैदा किया है, उसी ने नक्षत्रों को पैदा किया, सूर्य मण्डल को पैदा किया, आकाशगंगाओं को बनाया। यह सारा जगत् चदरिया है। इस चादर के अन्दर देवता भी आ जाते हैं। देवता क्या हैं ? देवता प्रकाश से बनी हुई ताकतें हैं। प्रकाश

ही तो ब्रह्म है। तो जैसी जगत् की चादर बनी है वैसी ही वो चादर है जो आपने खुद बनाई है। अब नहीं तो पहले बनाई थी। मैं आपको कल बता रहा था कि पुनर्जन्म और कर्म का जो सिद्धान्त है वह वैज्ञानिक है। पुनर्जन्म को पश्चिम भी मान रहा है तो आपने अपनी चदरिया अब नहीं तो पहले बनाई होगी। आप इस समय यहाँ बैठे हैं क्या पता कि आप मेरे साथ पहले भी थे अगर आप नहीं थे तो आप यहाँ क्यों आते। एक बार महाराज जी ने मुझे कहा कि तू मेरे पास वैसे ही नहीं आ गया तेरे पिछले जन्मों के संस्कार मेरे साथ थे। 1968 में अमेरिका में महाराज जी ने मुझे लिखा I.C. Sharma मैं 82 साल का हो गया मैं यह चाहता हूँ कि मेरे अन्दर सच्चाई का मिशन दाता दयाल ने दिया है वो आगे चलता रहे।" चूंकि उन्होंने जन्म लिया था जीवों का उद्धार करने के लिए, दया के लिए, मनुष्य चोले में आकर, जीवों को अंग लगाकर गुरु के देश ले जाने के लिए। गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए परम दयाल जी महाराज ने कहा "ऐ सत्संगियो तुम मेरे सद्गुरु हो, तुमने मुझे जगा दिया।" अवतार को भी जगाना पड़ता है। गुरु वसिष्ठ ने राम को जगाया। यदि विश्वामित्र नहीं होते तो राम का अवतार पूरा नहीं होता :—

सत्संग के प्रारम्भ में मैंने एक श्लोक कहा :—

परमतत्त्वस्य अवतारं; परमपूज्यं सत्संगिनाम् ।
मानवस्य परम इष्टं फकीरं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

आज गुरु पूर्णिमा है। गुरु की महिमा का क्या मतलब है—परमपूज्यम् सत्संगिनाम्। हमारे युग के इस समय में परमतत्त्व के पूर्ण अवतार परम दयाल जी महाराज थे। मैं ये नहीं कह रहा कि राम कम थे या कृष्ण कम थे। दाता दयाल जी महाराज ने कहा है :—

न मैं राम कृष्ण का सेवक, ईश ब्रह्म नहीं जानूं।
मैं तो नाम फकीर दिवाना सबसे बढ़कर मानूं ।।
जो फकीर मोहे दर्शन देवे अपना भाग्य सराहूँ ।
अपने तन की चाम की जूती पग फकीर पहराऊँ ।।

अरे दाता दयाल जी महाराज भी तो महात्मा बुद्ध का अवतार थे जिनको सालिगराम जी महाराज ने जगाया और वो परम दयाल जी महाराज को कह रहे हैं कि मैं राम, कृष्ण का सेवक नहीं हूँ इसका मतलव ये नहीं कि दाता दयाल जी महाराज राम, कृष्ण के अवतार को नहीं मानते थे। राम गृहस्थ का अवतार थे तो कृष्ण वानप्रस्थ का अवतार थे। यदि राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे तो कृष्ण लोला पुरुषोत्तम थे और कृष्ण को राम से ऊँचा माना जाता है। कृष्ण को राम से ऊँचा क्यों माना जाता था जबकि कृष्ण झूठ बोलते थे और राम झूठ नहीं बोलते थे। राम ने बाली को मारते समय केवल एक बार झूठ का सहारा लिया। राम अपने युग के अवतार थे और उन्होंने बताया कि तुम गृहस्थ में रहते हुए भी वानप्रस्थ में कैसे रह सकते हो। तुम लोक भी बना सकते हो और परलोक भी बना सकते हो यदि अपने आपको पहिचान लो :—

पहचान ले अपने को तो इन्सान खुदा है।
जाहिर में है गो खाक मगर खाक नहीं है ।।
जलवों की खता क्या जो दिखाई नहीं देते।
खुद देखने वालों की नज़र पाक नहीं है ।।

आप सब पाक हो, आप परम दयाल जी महाराज के शिष्य हो, लेकिन आपकी दृष्टि पर मैल चढ़ी हुई है। 'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि', अगर आपकी नज़र पाक हो जाये, तुम्हारे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अहंकार का पर्दा हट जाये तो तुम परमतत्त्व को पा जाओगे। सद्गुरु असलियत ही

तो बताता है। राम ने भी तो यही कहा कि अगर तुम गृहस्थ में रहते हुए मर्यादा का पालन करते रहो तो तुम परमतत्त्व को पा जाओगे। भक्ति तो अकाट्य है। भक्ति में क्या है ? कि तुम सद्गुरु को प्यार करो इसका मतलब है कि सद्गुरु से सम्पर्क रखो। उसे पिता मानो, भाई मानो, पुत्र मानो, मित्र मानो यदि कुछ नहीं मानते तो उसको शत्रु मानकर उसका विरोध करो उसके सामने लड़ने के लिए आ जाओ जैसे रावण आ गया। जब रावण के प्राण निकलने लगे तो उसके पास भगवान् राम गये तो रावण ने नमस्कार किया। रावण जानता था कि राम अवतार हैं। राम ने कहा कि "अगर तू चाहे तो मैं तुझे ज़िन्दा कर दूं" रावण ने कहा "नहीं मैं ज़िन्दा नहीं होना चाहता आपके हाथों से मरने के लिए ही तो मैंने आपसे शत्रुता की थी, आपका विरोध किया था।" आप सद्गुरु के साथ सम्पर्क रखो उस सम्पर्क से आप पहुँच जाओगे। नज़र पाक करने का मतलब है कि आपके और मालिक के बीच में जो पर्दा पड़ा हुआ है उसे हटा दें। जब ये पर्दा हट जायेगा तो आपको पता चल जायेगा कि मेरे अन्दर देवता हैं। ये सब दर्जे हैं, सहस्रदल कमल है, सारे जगत् के अन्दर जो कुछ हो रहा है हज़ारों कलाओं से हो रहा है, हज़ारों कलाएँ आपके हज़ारों विचारों के रूप में हैं। सन्तमत खोज है ये बहुत सरल तरीके से अन्दर का ज्ञान और जगत् का ज्ञान करा देता है लेकिन यह कब होता है जब आप सद्गुरु की शरण आकर अपने अहंकार को मिटा दें। जब तक आपके अन्दर अहंकार है तब तक यह ज्ञान नहीं हो सकता। मैं आपको बता रहा था कि भगवान् कृष्ण का अवतार भगवान् राम के बाद हुआ उनके अन्दर भगवान् राम की सारी खबियाँ मौजूद थीं। उन्होंने कहा कि जब तुम अपने

आपको पहचानोगे तो तुम ये देखोगे कि तुम शरीर नहीं हो शरीर तुम्हारा है, तुम मन नहीं हो मन तुम्हारा है। मन से जो तुम काम करते हो अच्छा, बुरा, इंगला, पिंगला का, इन अच्छे, बुरे कामों से ऊपर उठना चाहिए। सुषुम्ना क्या है? सुषुम्ना है आपकी संकल्प शक्ति। संकल्प क्या है? संकल्प है अपने आपको मालिक के सुपुर्द कर दो। यह संकल्प सुषुम्ना है। आपको सुषुम्ना बताती है कि आप अविनाशी परमतत्त्व हो जिसने जगत् को अच्छा, बुरा बनाया। भगवान् कृष्ण ने बताया कि आप अच्छे, बुरे कर्मों से तब ऊपर उठ सकते हो जब अपने ध्यान को ऊँचा करोगे। अपनी तार को मालिक से मिला दोगे अपनी सुषुम्ना को मालिक से मिला दोगे तब तुम्हारा अच्छा, बुरा सब समाप्त हो जायेगा और इस जन्म के अन्दर आपके पिछले सभी कर्म कट जायेंगे और आप परम-तत्त्व हो जाओगे। गोपियाँ कौन थीं? गोपियाँ देवता थीं। देवता मनुष्य के रूप में मोक्ष प्राप्त करने के लिए आये। मोक्ष कब मिलता है? जब कोई मनुष्य के रूप में जन्म ले और सद्गुरु की शरण में आये और उसके कहने पर चले। देवता गोपियाँ बनकर आये। उन्होंने भगवान् कृष्ण से प्रेम का रिश्ता रखा। गोपियों का प्रेम आत्मिक प्रेम था कोई शारीरिक प्रेम नहीं था। गोपियाँ कृष्ण से इतना प्यार करती थीं कि कृष्ण जब बन्सी बजाते थे तो सारी गोपियाँ आ जाती थीं।

एक दिन गोपियों ने भगवान् कृष्ण से कहा कि हम आपके गुरु जी के दर्शन करना चाहती हैं। जब तुम इतने अच्छे हो तो तुम्हारे गुरु कितने अच्छे होंगे। कृष्ण ने कहा "मेरे गुरु खूब खाने-पीने वाले विशालकाय हैं। पहले सारी गोपियाँ एक-२ थाल लड्डुओं का बनाकर लाओ तब जाना

मेरे गुरु के दर्शन करने के लिए। 16 हज़ार गोपियाँ एक-२ थाल लड्डुओं का बनाकर ले आईं और भगवान् कृष्ण से कहा कि हम तुम्हारे गुरु के पास दर्शन करने के लिए जाना चाहती हैं। भगवान् कृष्ण ने कहा "अच्छा, वह यमुना के पार रहते हैं चली जाओ और उनसे कहना हमें कृष्ण ने भेजा है। गोपियाँ गईं मगर रास्ते में यमुना में बाढ़ आई हुई थी सब की सब गोपियाँ भगवान् कृष्ण के पास आकर कहने लगीं कि यमुना में तो बाढ़ आई हुई है हम कैसे जायें? भगवान् कृष्ण ने कहा "तुम सब जाकर युमना मैय्या से दर्दे-दिल से प्रार्थना करो कि अगर कृष्ण ने अपने जीवन के अन्दर मक्खन खाया नहीं, चुराया नहीं तो यमुना मैय्या रास्ता दे दे। गोपियों ने जाकर यमुना मैय्या से ऐसा ही कहा और प्रार्थना की। यमुना ने रास्ता दे दिया। सब गोपियाँ कृष्ण के गुरु के पास पहुँचीं। भगवान् कृष्ण के गुरु लम्बे-चौड़े विशालकाय बैठे हुए थे। गोपियों ने लड्डू खिलाने शुरू किये। भगवान् कृष्ण के गुरु खाते गये—खाते गये और अन्त में 16 हज़ार थाल हड़प कर गये। प्रसाद के लिए एक दाना भी न छोड़ा। गोपियाँ कहने लगीं हमें कृष्ण ने भेजा है हम आपके दर्शन करना चाहती थीं। गुरु जी ने कहा, "मुझे देख लिया मेरे दर्शन कर लिये अब जाओ।" गोपियाँ गईं तो यमुना में फिर बाढ़ आई हुई थी। गुरु के पास वापस आकर कहने लगीं हम कैसे जायें यमुना में तो बाढ़ आई हुई है। उन्होंने कहा "तुम आईं कैसे थीं ?" गोपियों ने कहा "कृष्ण ने कहा था कि यमुना मैय्या से कहो कि अगर कृष्ण ने माखन खाया नहीं, चुराया नहीं तो यमुना मैय्या रास्ता दे दे।" हमने ऐसा ही कहा और यमुना ने रास्ता दे दिया। गुरु ने कहा "बस यही बात है। तुम जाकर यमुना से कहो कि अगर मैंने तुम्हारे लड्डुओं का एक दाना तक

न खाया हो तो यमुना मैय्या रास्ता दे दे।" गोपियों ने जाकर यमुना मैय्या से कहा "अगर हमारे कृष्ण के गुरु ने लड्डुओं का एक दाना तक न खाया हो तो हमें रास्ता दे दो।" यमुना ने रास्ता दे दिया। सारी गोपियाँ यमुना पार करके कृष्ण के पास पहुँचीं। भगवान् कृष्ण ने कहा "क्यों मेरे गुरु के दर्शन कर लिये ?" गोपियों ने कहा "हाँ-२ कर लिये।" भगवान् कृष्ण ने कहा "अच्छे लगे ?" गोपियाँ कहने लगीं "हाँ अच्छे लगे" भगवान् कृष्ण ने कहा "मैंने तुम्हें कहा था न कि मेरे मुकाबले में हजारगुणा अच्छे हैं" गोपियों ने कहा हाँ-हाँ हजारगुणा अच्छे हैं, लाखगुणा अच्छे हैं, अरे तू भी झूठा और तेरा गुरु भी महा-झूठा। तूने हमारी मटकियाँ फोड़ीं, मक्खन चुराकर खाया और कहता है कि मैंने मक्खन खाया नहीं, चुराया नहीं तो यमुना रास्ता दे दे और यमुना मान जाती है और तेरे गुरु ने हमारे सामने सारे लड्डू खा लिये और कहते हैं कि मैंने लड्डू का एक दाना तक नहीं खाया।" यह बात जरूर है कि झूठ में सबसे आगे थे। भगवान् कृष्ण ने कहा कि बस, यही तो बात है अरे मक्खन किसने खाया ? मेरे शरीर ने लेकिन मैं शरीर नहीं हूँ और मेरे मन ने चोरी का संकल्प किया लेकिन मैं मन नहीं हूँ। न मैं शरीर हूँ, न मन हूँ, मैं तो परमतत्त्व हूँ। भगवान कृष्ण का जीवन सन्तमत का जीवन था उन्होंने बता दिया गृहस्थ के अन्दर रहते हुए उसमें फँसना नहीं है। शरीर अपना काम करता है, मन अपना काम करता है। अगर सुरत को मन से ऊपर उठाकर देखो तो अच्छा, बुरा कुछ नहीं रहता। वहाँ साँच-झूठ कुछ नहीं रहता। लेकिन यह कब नहीं रहता जब गुरु की कृपा से सुरत जाग जाती है। भगवान् कृष्ण का अवतार लीला पुरुषोत्तम का अवतार था क्योंकि वह आगे चलकर

कबीर के अवतार की तैयारी कर रहा था। एक सद्गुरु आगे आने वाले सद्गुरु के लिए पृष्ठभूमि बनाता है। वह नींव बनाता है जो आगे जाकर इमारत बनती है। राम बारह कला के अवतार थे और कृष्ण सोलह कला के सम्पूर्ण अवतार थे और परम दयाल जी सर्वकला सम्पूर्ण थे। सद्गुरु इस जगत् में जगत् कल्याण के लिए, जीवों पर दया करने के लिए, जीवों से प्यार करने के लिए आता है। जब सद्गुरु देखता है कि मेरा जीवन समाप्त होने वाला है तो उस दया को और आगे बढ़ाने के लिए अपने शिष्य को अपने जैसा ही नहीं बल्कि अपने से ज़्यादा अच्छा बनाता है, अपने से ज़्यादा ताकत देता है, शक्ति देता है ताकि उसका मिशन पूरा हो जाये। यह किसी के वश की बात नहीं है कोई कहे कि मैं कर रहा हूँ तो 'मैं' तो है ही नहीं। मैं फकीरमय क्यों लिखता हूँ क्योंकि मैं फकीरमय हूँ। मैं बता रहा था कि कृष्ण के अवतार में राम की सभी बातें हैं लेकिन उससे आगे हैं।

कबीर साहिब जब पैदा हुए उस समय हिन्दु धर्म बहुत बुरी दशा में था उस समय जातिवाद तथा छूआछात थी। लोगों ने कहा कि कबीर साहिब ने मुसलमान के घर जन्म लिया लेकिन उनके अन्दर कोई भी बात इस्लाम धर्म की नहीं थी। ब्राह्मणों ने यह बताने की कोशिश की कि कबीर ब्राह्मणी के पेट से पैदा हुए जो रामानन्द जी की चेली थी। और कबीर अपनी माता के हाथ के अंगूठे से पैदा हुए इसलिए उनका नाम करबीर था अब करबीर नाम तो होता नहीं। इसी प्रकार कबीर के जन्म के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गईं लेकिन कबीर साहिब तो परमतत्त्व के अवतार थे। मैं आपको बता रहा था :—

इंगला पिंगला ताना भरनी ।
सुषुमन तार से बीनी चदरिया ।।

जो आपकी संकल्पशक्ति है वह इस बात का प्रमाण है कि आपके अन्दर आत्मा से ऊपर अविनाशी तत्त्व बैठा हुआ है । वह आपको शक्ति देता है । आपके बड़े सौभाग्य हैं कि आप इस मन्दिर में आकर सत्संग सुन रहे हैं । यह आपका प्रारब्ध कर्म है । प्रारब्ध कर्म से जो आप शब्द सुन रहे हैं या सत्संग में जो बात आपको बताई जा रही है उस पर चलना या न चलना आपकी मर्जी पर है और यह आपकी सुषुम्ना शक्ति है । यदि आप कही हुई बात पर चलोगे या अमल करोगे तो आपका रास्ता सहज हो जायेगा अगर नहीं चलोगे तो कठिन हो जायेगा ।

आखिरी वैसाखी पर इसी स्टेज पर महाराज जी बैठे थे । मैंने सत्संग दिया, महाराज जी ने सत्संग दिया और दूसरों ने भी सत्संग दिया । दूसरे दिन मैंने कहा "महाराज जी मैं एक सत्संग और देना चाहता हूँ" बोले "क्यों ? कल तू ने वो सब कुछ कह दिया जो मैं चाहता था अब क्या जरूरत है ?" मैंने कहा "मैं आपके शरीर में रहते हुए यह देखना चाहता हूँ कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ सही कह रहा हूँ ग़लत तो नहीं कह रहा ।" महाराज जी ने मुझे थपकी दी और उसी वक्त वरदान दिया "शर्मा तू जो कुछ भी कहेगा हमेशा सही कहेगा ।" अब उनकी कृपा से मैं बोल रहा हूँ मैं क्या बोल रहा हूँ उनकी कृपा बुलवा रही है । अब मैं खुद कभी-२ हैरान होता हूँ कि :

'वाणीजालं महाजालम्'

इस वाणी के महाजाल को साफ करने के लिए एक सद्गुरु दूसरे सद्गुरु को काम दे जाता है । महाराज जी कहते थे कि वाणी के जाल में मैं भी फँसा हुआ था । मैं

आपको बता रहा था :—

अष्ट कमलदल चरखा डोले,
पाँच तत्त्व गुन तीनी ।

पाँच तत्त्व और तीन गुण आठ हो जाते हैं। यहाँ पर आकर कमलदल का अर्थ यह नहीं है कि पाँच तत्त्व तीन गुणों से मिलकर आठ हो जाते हैं इसका मतलब यह है कि आठ दलों वाला कमल पाँच तत्त्वों और तीनों गुणों को पैदा करके जगत् की रचना करता है। मुझे एक व्यक्ति के सत्संग को सुनकर हँसी आ गई जिसने नासमझी में यह कह दिया कि पाँच तत्त्व और तीन गुण ही अष्टदलकमल हैं। अष्ट दल कमल हमारा नाभिचक्र है जो विष्णु का स्थान है इसी तरह से ब्रह्माण्ड का अष्टदल कमल ब्रह्माण्डी मन एवं विष्णु है जिससे ब्रह्मा रूपी सृष्टि पैदा होती है। यह सृष्टि पाँच तत्त्वों और तीन गुणों की है जबकि अष्टदल कमल इनको पैदा करने वाला चरखा है।

जो विष्णु तत्त्व है जो सारे जगत् का ब्रह्माण्डी मन है। उसी तरह आपका मन है। पाँच तत्त्व का मतलब है आपके मन के अन्दर संकल्प पैदा होता है, उस संकल्प-विकल्प से आपके मन ने पाँच तत्त्वों को विशुद्ध रूप में और तीन गुणों को विशेष रूप में चिन्तन, ध्यान से आपके शरीर, मन को बनाया। आपको वही चीज़ मिलेगी आप में वही गुण होंगे जो आपके पिछले कर्मों के मुताबिक होंगे। आपका शारीरिक और मानसिक जो शरीर है यह आपके पिछले कर्मों के मुताबिक बना हुआ है, देवताओं का शरीर सूक्ष्म तत्त्वों से बना हुआ है। इसीलिए कबीर साहिब ने आगे चलकर कहा :—

साईं को सियत मास दस लागे,
ठोंक-२ के बीनी चदरिया ॥

"ठोंक-२ कर बीनी" का मतलब है कि आपके जितने भी कर्म हैं वे आपकी चादर के अन्दर बुने हुए हैं। ये कर्म आपको भोगने पड़ेंगे :—

यह चादर सुरनर मुनि ओढ़ी ओढ़ के मैली कीन्ही।
दास कबीर जतनकर ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया।

इन पंक्तियों में सारा राज़ बता दिया। सुर, नर, मुनि की चादर में भी पाँच तत्त्व और तीन गुण हैं। देवता भी लड़े, उन्होंने भी क्रोध किया, मन में बुरे विचार रखे इसलिए वह मुक्त नहीं हुए। लेकिन कबीर साहिब ने इस चोले में आकर जुलाहे के लड़के बनकर अपने आपको पाक और पवित्र रखा। भगवान् कृष्ण ने मन और शरीर से ऊपर उठकर काम किये इसलिए वह साँच-झूठ से ऊपर उठ गये। कबीर साहिब ने कहा "अगर आप मालिक से प्यार करते हैं, अपने आपको मालिक को समर्पित कर देते हैं तो आप भी पाँच तत्त्व और तीन गुणों से ऊपर उठ जायेंगे" कबीर साहिब ने जो कुछ भी लिखा है वह वेदों पर, उपनिषदों पर लिखा है। सन्त का अवतार, परमतत्त्व का अवतार, सद्गुरु का अवतार, हर युग में उस युग की, उस समय की ज़रूरत के मुताबिक होता है वह लोगों को चेताता है। दाता दयाल जी ने महाराज जी को कहा :—

'न मैं राम कृष्ण का सेवक'

इसका मतलब यह नहीं कि वह राम, कृष्ण को नहीं मानते थे। दाता दयाल जी महाराज ने भगवान् कृष्ण को सतपुरुष का सबसे ऊँचा अवतार माना है। राम और कृष्ण अपने समय के अवतार थे। जिस समय कृष्ण आये उस समय भी दुष्टों का चक्कर था, धर्म गिर चुका था, आम आदमी गिर चुका था। इस समय म आम आदमी को ऊपर उठाने के लिए, धर्म को फिर से स्थापित करने के लिए,

दुष्टों को तथा दुर्योधन को सजा देने के लिए, अर्जुन को भक्ति देने के लिए कृष्ण का अवतार हुआ। मैं समझता हूँ कि कृष्णावतार में काल और दयाल दोनों मिले हुए थे। काल कम था और दयाल ज़्यादा था लेकिन इस कलियुग के अन्दर काल की ज़रूरत नहीं. काल को मारने की ज़रूरत नहीं क्योंकि जितने भी सन्त अवतार हुए हैं उन्होंने जीव को बड़े सरल तरीके से बताया कि तुम ऊपर कैसे जा सकते हो। कबीर साहिब ने शब्दाभ्यास बताया और कहा कि हरएक मनुष्य चाहे वह बूढ़ा हो, जवान हो, अमीर हो, ग़रीब हो शब्दाभ्यास से परमतत्त्व को पा सकता है। उसे किसी प्रकार के आडम्बर की ज़रूरत नहीं है। समय की बात है संन्यासवाद ग़लत रास्ते पर चल रहा था कबीर साहिब ने सच्चाई को बयान किया। हरएक को उसके मुताबिक समझाया, वेदान्तियों को, नाथों को, सूफियों को समझाया, मुसलमानों का राज्य था इसलिए बात को सैन-बैन में कहा जाता था। इस सच्चाई को आगे चलाने के लिए उन्होंने किसी संन्यासी को उत्तराधिकारी नहीं बनाया बल्कि गृहस्थी को उत्तराधिकारी बनाया जो जाति का बनिया धर्मदास था और उसको कहा :—

धर्मदास तोहे लाख दुहाई,
सार भेद बाहर नहीं जाई।

यदि कबीर साहिब सारा भेद बता देते तो उस समय मुसलमानों का राज्य था और मुसलमान कबीर साहिब का विरोध करते। लेकिन जब स्वामी जी महाराज आये तो इस सच्चाई को उन्होंने स्पष्ट कहा। स्वामी जी महाराज ने तो 5 साल की उम्र से ही कबीर साहिब की सच्चाई को अनुभव किया और बताया। स्वामी जी महाराज पूर्ण अवतार थे लेकिन कबीर साहिब के बाद 500 वर्षों में ही

फिर जरूरत हो गई कि कोई सद्गुरु सच्चाई को अनुभव करने के बाद जीवों को सच्चाई का मार्ग बताये क्योंकि धर्मदास के बाद जितने भी गुरु हुए उन्होंने यह तो रखा कि "सार भेद बाहर नहीं जाई" लेकिन सारभेद क्या है यह उन्होंने स्वयं भी अनुभव किया इसलिए आज से सौ साल से अधिक पहले स्वामी जी महाराज का अवतार हुआ और स्वामी जी महाराज ने कबीर की सच्चाई को अन्दर से निकाल कर बहुत सरल तरीके से आम आदमी को बताया। स्वामी जी महाराज की 'सारवचन' पुस्तक के अन्दर उपनिषद्, भगवद्गीता हैं। लेकिन स्वामी जी महाराज के इस मिशन को सैकड़ों लोगों ने पकड़ा उनमें से कुछ आगे आये लेकिन उन आगे आने वालों में से काम सिर्फ सालिगराम जी महाराज को दिया। वास्तव में स्वामी जी महाराज ने इस मिशन का कोई नाम या मत नहीं रखा लेकिन सालिगराम जी महाराज ने उसे 'राधास्वामी' नाम दिया और उसे व्यवस्थित किया। सालिगराम जी महाराज के अन्दर वह सभी गुण थे जो होने चाहिएँ। उनकी इच्छा थी कि इस सच्चाई को हमेशा के लिए एक 'सारवचन' पुस्तक के अन्दर रख दिया जाये और इस सच्चाई को आगे फैलाया जाये। इस सच्चाई को उन्होंने दाता दयाल जी महाराज को दिया। दाता दयाल जी महाराज अपने गुरु राय सालिगराम जी महाराज से केवल तीन बार मिले। तीन बार मिलने में ही राय सालिगराम जी महाराज ने दाता दयाल जी को कहा "तुम सन्तमत के व्यास हो।" दाता दयाल जी महाराज ने अपने जीवन में पाँच हजार किताबें लिखीं। वह एक रात में एक किताब लिख देते थे। दाता दयाल जी महाराज ने जो कुछ लिखा उसका कोई मुकाबला नहीं है। दाता दयाल जी महाराज ने इस मिशन को आगे

चलाने के लिए अपने शिष्यों में से परम दयाल जी महाराज को पहचाना और कहा :—

ना मैं राम कृष्ण का सेवक ईश ब्रह्म नहीं जानूं।
मैं तो नाम फकीर दिवाना सबसे बढ़कर मानूं॥

परम दयाल जी को बताया कि तू फकीर है, तू परम-तत्त्व है, परमसन्त है :—

'मैं भी तरूँ फकीर चरण लग'

अरे ! गुरु शिष्य को कहता है कि मैं भी तेरे चरणों में लग कर तर जाऊंगा। ये समझने की बात है। यह इन्सानी काम नहीं है। इस बात को कोई व्यक्ति नहीं कह सकता। यह काम कोई और ताक़त करती है।

1968 में महाराज जी ने मुझे लिखा "अब मैं 82 वर्ष का हो गया। मैं चाहता हूँ कि तेरे जैसा कोई व्यक्ति इस काम को आगे चलाये। तुम अच्छी प्रकार से सोच लेना। कोई जल्दी की बात नहीं है। तुम गृहस्थी हो। जब तू यहाँ आयेगा तब मैं देखूंगा कि तुम्हारे अन्दर क्या गुण हैं ? और क्या अवगुण हैं ? तुम्हारे अन्दर जो गुण होंगे उनको पनपाऊँगा।" महाराज जी लगातार अमेरिका आते रहे। उन्होंने परसराम जी को कहा "परसराम ! मैं यहाँ पर अमेरिकन लोगों को सत्संग देने के लिए नहीं आया मैं तो I. C. Sharma को तैयार करने के लिए आया हूँ।" यहाँ जो कुछ भी हो रहा है उन्हीं की ताक़त व शक्ति से हो रहा है। मैं आपको सच्चे दिल से एक बात कह सकता हूँ। मैंने अपने जीवन में दो लक्ष्य रखे (1) मैं अच्छा बनूं और ऐसा अच्छा बनूं कि अगर मैं किसी का भला नहीं करूँ तो किसी का बुरा भी नहीं करूँ। मेरी बचपन से यह कोशिश रही कि जानबूझ कर मेरी ओर से, शरीर, मन, आत्मा से किसी को दुःख न पहुँचे। बचपन से मैं समाधि लगाता था।

उस समय मुझे सन्तमत का पता नहीं था कि सन्तमत क्या है ? जब में 10वीं कक्षा में पढ़ता था उस समय सुना था कि आगरा में एक ऐसा आश्रम है जहाँ लोगों को प्रकाश दिखाई देता है जब कि मैं समाधि में रोज़ाना ही प्रकाश देखता था।

(2) मेरे जीवन का दूसरा लक्ष्य था कि मैं प्रकाश में विलीन हो जाऊँ। मेरे ताऊ जी शिवभक्त थे। मेरी माता वैष्णव थी वह कृष्ण की पूजा करती थी तथा कृष्ण का ध्यान करती थी। मैं 5 साल की उम्र में कई नाम बोलता था लेकिन जब मैं ध्यान करता था तो मुझे प्रकाश दिखाई देता था और उस समय मेरी यह इच्छा होती थी कि मैं इस प्रकाश के अन्दर विलीन हो जाऊँ। मुझे प्रकाश के अन्दर विलीन होने में आनन्द आता था। यही कारण था कि महाराज जी को मिलने से पहले मेरी वह अवस्था थी जो इस शब्द में आया है "लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में।" मेरा काम भी पढ़ाने का था और पढ़ाता भी था भगवद्गीता, वेद, उपनिषद् आदि। दर्शन शास्त्र पढ़ाना एक अलग बात है लेकिन उसके अन्दर रहना, अपनी रहनी को वैसा बना लेना बड़ा मुश्किल है। मैंने बड़े-२ दार्शनिक देखे। उनमें भी ईर्ष्या, द्वेष, नफ़रत की भावनाएँ भरी पड़ी हैं। एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं। वे जो कुछ पढ़ाते हैं उस पर अमल नहीं करते हैं। मैं भी दर्शन शास्त्र पढ़ाता था लेकिन मेरे दो रास्ते थे—(1) जाने या अनजाने में मेरे से किसी को कष्ट नहीं पहुँचे। (2) जो बच्चे मेरे घर आते थे उनको मुफ्त पढ़ाता था। क्योंकि मेरी कक्षा में यदि किसी विद्यार्थी को ट्यूशन की ज़रूरत है तो मैं उसे मुफ्त पढ़ाता था क्योंकि वह मेरी कमी से कमज़ोर है। मालिक की हमेशा मेरे ऊपर ऐसी कृपा रही कि मेरी कक्षा में कोई भी

छात्र फेल नहीं हुआ। मैं आपको बता रहा था कि हम क्या हैं ? जब आदमी उस अवस्था पर पहुँच जाता है तो तब समझता है कि अरे मैं तो अपने आपको I. C. Sharma समझता था, मैं तो अपने आपको Ph.D. समझता था मगर यह तो कुछ नहीं है। मैं क्या हूँ।

महाराष्ट्र अहेरी से हम चन्द्रनगर आये। यहाँ पर विद्वानों ने बलाया था। सारे पढ़े-लिखे लोग थे। उनको सत्संग तो क्या देना था, भाषण देना था। उनमें से एक प्रोफेसर उठा और उसने मेरे बारे में एक-दो बातें बताकर कहा कि यह अपना परिचय स्वयं देंगे। अब बताओ मैं उन्हें अपना परिचय देने गया था या अपना कुछ अनुभव देने गया था ? मैंने उस समय कहा कि मेरा परिचय क्या है ? मैं खुद नहीं जानता :—

पता क्या खाक बतलायें नहीं नामोनिशाँ अपना।
हम अपने आप हैरां हैं करें क्यों कर बयाँ अपना॥

क्या मैं यह कहता कि I. C. Sharma फलाने के घर में पैदा हुआ है, उसने M.A. किया, Ph.D. किया पढ़ाया इतनी किताबें लिखीं ? अरे यह सब कुछ नहीं है ! जब मैं महाराज जी के पास आया तो मैंने इन सबको बलाये ताख रख दिया था। उनके दर्शनमात्र से, उनके एक वाक्य से मेरे अन्दर जो जागृति की अवस्था आई उसको मैं बयान नहीं कर सकता। महाराज जी के सम्पर्क में आने पर मैंने देखा कि दाता दयाल जी महाराज का जो शब्द है उस शब्द के मुताबिक मैं बचपन से काफी सीमा तक चल रहा था। मुल्तान में मैंने लड़कियों का कालिज चलाया। मैं प्रिंसीपल था। B.A. की जब बिदाई पार्टी हुई तो फोटो खिचा। मैंने फोटोग्राफर को कहा कि इसका शीर्षक (ourselves) "हम अपने आप में" रखो। मैं कालिज में बहुत सख्त था। मैं

किसी लड़की को बोलने नहीं देता था। 1944 की एक घटना आपको बताता हूँ। उस समय मेरी उम्र 22 वर्ष की थी। मैं कालिज का Principal था। एक दिन कालिज में गैर-हाज़िर था। मेरी जगह दूसरा प्रोफेसर Principal बन गया था। उसका नाम लक्ष्मी नारायण था। होली के दिन थे। कालिज में सब लड़कियाँ थीं। इधर लक्ष्मी नारायण को थोड़ा सा अहंकार आ गया कि मैं Principal हूँ। वैसे आदमी अच्छा था। लड़कियाँ छत पर रंग बनाकर बैठी थीं। लक्ष्मी नारायण ने कहा "रंग मत बनाओ" किसी भी लड़की ने उसकी बात नहीं मानी। लड़की ने रंग की बाल्टी पकड़ी हुई थी। लक्ष्मी नारायण ने लड़की का हाथ पकड़ कर रंग की बाल्टी पलट दी। उस लड़की ने लक्ष्मी नारायण को बदतमीज़ कह दिया। उस समय कोई भी लड़का लड़की का हाथ नहीं पकड़ सकता था। परिणाम क्या हुआ कि जब मैं दूसरे दिन कालिज गया तो सारी लड़कियाँ हड़ताल पर बैठी थीं। मेरे पूछने पर बताया "उस प्रोफेसर ने एक लड़की का हाथ पकड़ लिया।" मैंने लक्ष्मी नारायण को बुलाकर पूछा उसने कहा "उस लड़की ने मुझे बदतमीज़ कहा था।" अब मुझे उनका फैसला करना था। मैंने पहले लक्ष्मी नारायण से कहा "तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। हमारे देश में स्त्री जाति की बड़ी इज़्ज़त है। जब तक लड़की अविवाहित होती है उसको हम देवी मानते हैं। जब उसकी शादी हो जाती है तो वह लक्ष्मी होती है, जब वह माँ बनती है तो उसे माता मानते हैं।" कहने लगा "मेरी मंशा ग़लत नहीं थी। मैंने जानबूझ कर नहीं किया।" उसने मेरे से माफी माँगी। अब मैंने छात्रा को बुलाया और उससे कहा "कान्ता तू अच्छे खानदान की है। तूने यह क्या किया? तूने उस प्रोफेसर को बदतमीज़ कहा।" कहने लगी "हाँ

मैंने कहा" मैंने कहा "आखिर तेरा गुरु है, तुम्हें उससे माफी मांगनी पड़ेगी" सब छात्राएँ बाहर से देख रही थीं। मैंने लक्ष्मी नारायण को बुलाया और कान्ता ने उससे माफी माँगी। हड़ताल समाप्त हो गई। उन छात्राओं की क्या भावना थी ? कालिज में विदाई पार्टी हुई। उस विदाई पार्टी में लड़कियों ने एक मेज़ लगाई थी और सब के बैठने के लिए कुर्सियाँ लगाई थीं। लड़कियों ने कहा कि हर व्यक्ति अपनी-२ सीट स्वयं देख ले। उन्होंने प्रत्येक सीट पर एक फर्ज़ी नाम रख दिया था जैसे एक लड़की सरला है उसको लिखा "Simple living and high thinking" (सरल जीवन और ऊँचा विचार) सब को पता लग गया कि इस प्रकार हमारे नाम का अर्थ लिखा हुआ है। इसी प्रकार एक लड़की का नाम था कमला, उसको लिखा Miss Lotus। अब मैं खड़ा था जिस सीट पर मिस लिखा था उसको देखता नहीं था। मैंने देखा कि एक सीट पर लिखा था :"जिसका कोई आकार नहीं" मैंने सोचा यही मेरी सीट है। लड़कियों ने कहा "यह आपकी सीट नहीं है यह तो ईश्वर नाम लड़की की सीट है।" जब सब सीटें भर गईं तो एक सीट पर लिखा था "मिस मैगनेट" (कुमारी चुम्बक) कहने लगीं यह आपकी सीट है।" फिर उन्होंने कुमारी चुम्बक की व्याख्या की और बताया "आप अविवाहित हो। आपके पास जब किसी की शिकायत के लिए आते हैं तो चुम्बक की तरह आकर्षण हो जाता है इसलिए हमने आपका नाम 'मिस चुम्बक' रखा"। मैं आपको अपना अनुभव बता रहा हूँ। मैं उस समय ऐसी मस्ती में रहता था कि मैं किसी को पहचानता तक नहीं था। मुझे यह तक पता नहीं होता था कि इन्होंने कौन से रंग की साड़ी पहनी है। लेकिन जब महाराज जी के सम्पर्क में आया तो मेरे अन्दर एक बिस्फोट

हुआ और आध्यात्मिक जागृति आ गई। यह मालिक की कृपा थी :—

भरोसा तेरा है तेरी आस मन में।
लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में॥

आज गुरुपूर्णिमा है। हमारे परम गुरु दाता दयाल जी महाराज पूर्ण अवतार थे उनके इस शब्द में और हर शब्द की हर शैली में इतना आनन्द भरा है, इतनी चेतना भरी है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। दाता दयाल जी कह रहे हैं :—

'भरोसा तेरा है तेरी आस मन में'।

आपको उसका भरोसा है या नहीं। यह आपको कहा जा रहा है। यदि आपको उसका भरोसा है तो आप मौज में हो। पूरी तरह से आप उसको अपनी चिन्ताएँ दे दो। लोग अपनी चिन्ता भी नहीं देते हैं। अमेरिका में जब मैं कक्षा में पढ़ाता था तो ब्लैक बोर्ड पर पहले अपना नाम लिखता था और "No Hurry No Worry" (जल्दी नहीं चिन्ता नहीं) लिखता था। छात्रों से कहता था कि जिसको कोई शंका हो मुझसे टेलीफोन पर बात कर लेना। कई प्रोफेसर होते हैं जो देर से आने पर कक्षाओं के दरवाज़े बन्द कर लेते हैं लेकिन मैंने अपने छात्रों के लिए कक्षा के दरवाज़े कभी भी बन्द नहीं किये जो छात्र देरी से हाँफते हुए, भागते हुए आते थे मैं उनको कहता था कि आराम से आ जाओ। कई प्रोफेसर छात्रों के साथ सख़्ती का व्यवहार करते हैं मैं समझ नहीं पाता कि वह ऐसा क्यों करते हैं। अगर तुम्हारे अन्दर से द्वेष नहीं गया नफ़रत नहीं गई तो तुम पढ़ा नहीं सकते। मैंने छात्रों के साथ कभी भी सख़्ती का व्यवहार नहीं किया था। मैं उनको कहता था "अगर तुम्हें कोई चिन्ता है तो उन चिन्ताओं की गठरी बाँध करके बाहर रख आओ और चिन्तामुक्त होकर कक्षा में पढ़ो। जब जाओ तो अपनी चिन्ताओं की गठरी लेते जाना। (क्रमशः)

मासिक सन्देश

परमसन्त हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरे परम प्रिय सत्संगियो !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

पिछले महीने के सन्देश में मैंने आपको जून महीने की घटनाओं से सूचित कर दिया था। जुलाई में सूचना देने के योग्य मुख्य घटनाएँ जयपुर में मानवता पब्लिक स्कूल तथा मानवता मन्दिर के भवन के निर्माण का शिलान्यास तथा मानवता मन्दिर होशियारपुर में गुरुपूर्णिमा के सत्संग का आयोजन थीं। हम 5 जुलाई को होशियारपुर से रवाना होकर देहली पहुँचे। 6 को केवल विश्राम का प्रोग्राम था फिर भी बहुत से श्रद्धालु सत्संगी मिलने के लिए आते रहे। हम 7 जुलाई को प्रात:काल जयपुर के लिए रवाना हो गये। हालाँकि शिलान्यास की तिथि 13 जुलाई थी; पाठकों को यह बताना आवश्यक है कि हम इतने दिन पहले जयपुर के लिए क्यों रवाना हुए ?

इस विषय में मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता होती है कि 10 जुलाई 86 को मेरे प्रिय शिष्य ब्यावर के नगरसेठ श्री मोती चन्द गोलछा के सुपुत्र का शुभ विवाह था। मुझे प्राय: हरएक विवाह पर सम्मिलित होने का समय नहीं

मिलता। कई बार अपने निकटवर्ती सम्बन्धियों के विवाह पर भी मैं नहीं पहुँच सकता। इतना तक कि 18 जनवरी 1983 को आन्ध्रप्रदेश के दौरे के कारण अपने ज्येष्ठ पुत्र डा० अरुण कुमार जेतली की सगाई पर भी शामिल न हो सका था। किन्तु मेरे प्यारे शिष्य मोती चन्द के सुपुत्र के विवाह को मैं नहीं टाल सकता था। मैंने दो महीने पहले ही इस शुभ अवसर पर जयपुर जाने का निश्चय कर लिया था। उसका कारण यह है कि मोती चन्द मेरा शिक्षा का शिष्य होने के साथ-२ आज एक आदर्श सत्संगी भी है। यूं तो भारत में और विदेशों में मेरे हज़ारों शिष्य हैं और मुझे सभी प्यारे हैं किन्तु मोती चन्द का व्यक्तित्व दूसरों के लिए एक आदर्श बन सकता है। न ही केवल इतना बल्कि उसके जीवन काल की छात्र अवस्था से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक की घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि आशावादी दृष्टिकोण और शिवसंकल्प की शक्ति मनुष्य को बहुत ऊँचा उठा सकती है।

मैं 1955-56 में महाराजा कालिज जयपुर में दर्शन शास्त्र पढ़ाता था। मैंने दर्शन शास्त्र के विषय में कभी ट्यूशन फीस लेकर किसी को नहीं पढ़ाया था। उसका कारण यह था कि यदि मेरे विषय में किसी की कमी रह गई, तो उसका मतलब यह हुआ कि मैंने ठीक-ठीक नहीं पढ़ाया। वास्तव में मेरी कक्षा के किसी भी छात्र ने दर्शन शास्त्र के विषय में ट्यूशन की आवश्यकता महसूस नहीं की। यह मालिक की दया थी कि मेरे विषय में परीक्षा फल शत-प्रतिशत रहता था। इसलिए मैंने जब कभी भी किसी बात को शुल्क लेकर पढ़ाया वह अंग्रेज़ी के विषय में ही होता था। मेरी अंग्रेज़ी भाषा में गति अच्छी थी इसलिए मैं कभी-कभी अंग्रेजी की ट्यूशन स्वीकार कर लेता था।

श्री मोती चन्द गोलछा ने करीबन 8 महीने मेरे से B.A. की परीक्षा के लिए अंग्रेज़ी का अध्ययन किया।

मोती चन्द जयपुर के विख्यात गोलछा परिवार से सम्बन्धित हैं। इनके दादा जो संयुक्त परिवार के मुख्य थे, जयपुर के विख्यात जौहरी थे। इनके पिता के एक भाई अपने चाचा की गोद चले गये थे और बहुत ही सम्पन्न थे। जिन दिनों मोती चन्द B.A. में पढ़ते थे इनके पिता की एवं परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी किन्तु उदार-हृदय होने के कारण मोती चन्द ने महसूस किया कि जो शुल्क वह मुझे ट्यूशन के रूप में देते थे वह पर्याप्त नहीं था। एक दिन मोती चन्द ने मुझे कहा "गुरु जी! यदि मैं B.A. में पास हो गया तो मैं आपको एक रैले का नया साईकल भेंट करूंगा" मैं हँस पड़ा, उसे थपकी दी और कहा "बेटे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

मोती चन्द की परीक्षा का परिणाम निकला। वह B.A. पास हो गया। मुझे साइकल के बारे में कुछ भी याद नहीं था। कुछ दिनों के बाद सन्ध्या के समय जब बारिश पड़ रही थी मैं बापू नगर में अपने मकान के बरामदे में बैठा था। एक दम एक ताँगा हमारे फाटक के सामने रुका। मैं क्या देखता हूँ कि मोती चन्द एक नया साइकल उठाये ताँगे से उतरा और उसने वो रैले का नया साइकल मेरे मेरे सामने रखकर कहा "गुरु जी! यह मेरी वह भेंट है जिसका मैंने वचन दिया था।" उसके यह शब्द सुनकर और उसके चेहरे को देखकर मेरे आँसू आ गये। उसकी आँखों से श्रद्धा और प्रेम टपक रहे थे। मैंने यह अनुमान लगाया कि उसके घर की आर्थिक अवस्था ठीक न होने पर भी मोती चन्द ने अवश्य अपना वचन निभाने के लिए कहीं से पैसे उधार लिये होंगे। मैंने इस भाव को मन में छुपाते हुए

सहज में कह दिया "मेरे बेटे ! तुम एक दिन करोड़पति बनोगे ।" मोती चन्द मेरे पाँव छूकर घर लौट गया ।

इस घटना के 12 साल बाद उदयपुर में मुझे पता लगा कि मोती चन्द ने ब्यावर में उद्योग लगाया है और उसकी माली हालत अच्छी है । इस बात के करीब चार वर्ष बाद मुझे पता चला कि मोती चन्द ब्यावर नगर का सबसे बड़ा उद्योगपति बन गया है और वह वहाँ का नगरसेठ है । उसी वर्ष एक दिन मैं अपने एक मित्र अंग्रेज़ी के प्रोफेसर मसी, एक-दो और प्रोफेसरों के अतिरिक्त मेरी पूर्ववर्ती छात्रा दर्शन शास्त्र की प्रवक्ता डा० गिरिजा व्यास के साथ कार से जयपुर से उदयपुर जा रहा था । सायंकाल हो गया था और हम अजमेर से गुज़र रहे थे । सबको भूख लगी थी । क्योंकि मैं होटल का खाना नहीं खाता था इसलिए दूसरों ने भी नहीं खाया । मैंने सबको कहा "चलो आज ब्यावर के रास्ते से चलें । वहाँ मेरा एक पुराना शिष्य नगरसेठ है । शायद हम आज उसी के घर खाना खायेंगे" यद्यपि मैं उसे पिछले 16 साल से नहीं मिला हूँ लेकिन मुझे विश्वास है कि वह मुझे पहचान लेगा ।"

बात ऐसी ही हुई । ब्यावर नगर से करीब डेढ़ मील प ले अजमेर रोड पर हमने बाईं ओर एक बड़ा भवन देखा जिस पर लिखा था 'गोलछा हाऊस' । मैंने कार को फाटक के बाहर रुकवाया । उस समय कुछ अन्धेरा था । मोती चन्द अपने बरामदे के सामने बगीचे में बैठा आराम कर रहा था । ज्यों ही मैंने फाटक में जाकर आवाज़ लगाई "मोती चन्द" मोती चन्द तुरन्त लपक कर मेरे पास आया और उसने मेरे पाँव पर अपना सिर रख दिया । उसके इस प्रेम के व्यवहार से मेरे आँसू टपक पड़े । मैंने उसे गले से लगाया । मेरे सभी साथी यह देखकर चकित रह गये कि

16 वर्षों के बाद ब्यावर का नगरसेठ गुरु जी के पाँव पड़ गया। संक्षेप में मैं यह बता देना चाहता हूँ कि उस रात को मोती चन्द ने हम सबको राजस्थानी मेहमाननिवाजी के मुताबिक बहुत अच्छा भोजन खिलाया। इसके बाद मैं कई बार ब्यावर गया और मोती चन्द ने हर प्रकार से मेरी सेवा की।

जब से मैंने परम दयाल जी का काम संभाला मेरे ब्यावर जाने पर मोती चन्द ने हर वर्ष विशाल सत्संग आयोजित किये। उसका सारा परिवार सत्संगी है। मुझे इस बात पर गर्व है कि मोती चन्द न ही केवल एक सफल उद्योगपति है बल्कि चरित्र का आदर्श नमूना है और अब वह मेरा केवल साहित्यिक शिष्य ही नहीं है, अपितु वह मेरा अनन्य भक्त भी है। सबसे बड़ी बात यह है कि वह मानवता के असूलों पर चल रहा है, उसके साथ-२ जनकल्याण का कार्य कर रहा है। मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूरा विश्वास है कि उसका उद्योग अधिक से अधिक विकसित होगा और आर्थिक दृष्टि से वह अरबपति हो जायेगा। क्योंकि उसका धन कमाने का उद्देश्य परमार्थ के लिए है और वह एक ट्रस्ट के जरिये सामाजिक और आर्थिक सेवा कर रहा है। इन्हीं कारणों से मैं जयपुर मोती चन्द गोलछा के सुपुत्र के विवाह पर आशीर्वाद देने गया था।

8 जुलाई को जयपुर से चलकर हम मैटाडोर से कृषक जी महाराज के पोते श्री तेजमणि गुप्ता के नये मकान पर पहुँचे जहाँ पर 9 जुलाई को प्रात:काल गृहप्रवेश का सत्संग देना था। भीलवाड़ा के प्राय: सभी सत्संगी इसमें सम्मिलित हुए। सायंकाल हम श्री सुमेर सिंह के घर फकीर सदन में अजमेर पहुँचे। यहाँ पर कुछ समय विश्राम करने के बाद हम उसी रात जयपुर पहुँच गये।

10 जुलाई को हम श्री मोती चन्द गोलछा के सुपुत्र के विवाह में सम्मिलित हुए। बारात में कई वर्षों के बाद मेरी भेंट मेरे प्रिय शिष्य सुरेन्द्र सिंह से हुई जो 1954 में महाराजा कालिज में मेरा छात्र रहा था और जिसके बारे में मैंने कई सत्संगों में ज़िक्र किया है। छात्र अवस्था में सुरेन्द्र सिंह उद्दण्ड माना जाता था जबकि मेरी कक्षा में उसका व्यवहार बहुत अच्छा था। मेरे निकट रहने के कारण सुरेन्द्र सिंह ने वकालत पास कर ली और आज वह राजस्थान का एक माना हुआ कृषि का विद्वान् और ज़िमींदार है। उसे कई बार टैलीविज़न पर कृषि के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए बुलाया जाता है। 13 जुलाई को राजस्थान विश्व-विद्यालय से 2 कि० मी० दूर मुख्य सड़क पर मानवता पब्लिक स्कूल के शिलान्यास का उत्सव बड़ी शान से मनाया गया। हम 14 जुलाई को जयपुर से चलकर देहली के रास्ते 15 जुलाई को होशियारपुर पहुँच गये।

मेरे 25 जुलाई को विदेश जाने से पहले मुख्य सूचना योग्य घटना 20 जुलाई का गुरुपूर्णिमा का सत्संग था। इस बार इस अवसर पर दूर-२ से लोग आये। सत्संगियों की संख्या इतनी अधिक थी कि पिछले 20 वर्षों तक ऐसी भीड़ कभी एकत्रित नहीं हुई। गुरुपूर्णिमा का सारा कार्यक्रम वीडियोकैसिट पर रिकार्ड किया गया है जिसे दूसरे केन्द्रों पर भी दिखाया जायेगा।

23 जुलाई को सलवान पब्लिक स्कूल देहली में एक विशाल विदाई समारोह और सत्संग आयोजित हुआ। इसमें आचार्य श्री विजय नरेश नेगी भी सम्मिलित हुए और श्रीमती सलवान भी आईं। सलवान परिवार परम दयाल जी का अनन्य भक्त है और श्री एस. डी. सलवान की प्रेरणा और उनके परिश्रम से देहली में अधिक से अधिक सत्संग आयोजित

किये जा रहे हैं।

हम 26 जुलाई 1986 को प्रात:काल 3 बजे 'थाई एयर' लाइन से देहली से रवाना होकर करीब 10 बजे प्रात:-काल लंदन पहुँच गये जहाँ पर श्री किशोर गुप्ता अपनी सुपुत्री अंजना के साथ हमें लेने के लिए आये हुए थे। उन्होंने हमें बर्मिघम ले जाना था। उसी समय श्री राजीव पंडित भी हैण्डन लंदन से हमें लेने के लिए आ गये। हम सब दो कारों में पहले श्री राजीव पंडित के घर गये। वहाँ पर भोजन और विश्राम के बाद हम सायकाल 5 बजे बर्मिघम के लिए रवाना हो गये। 59 Trinity Road बर्मिघम श्री किशोर गुप्ता के मकान पर पहले से ही सत्संगियों की भीड़ लगी हुई थी। 26, 27 और 28 जुलाई को गीता भवन में परमसन्त परम दयाल पंडित फकीर चन्द जी महाराज की शताब्दी के उपलक्ष्य में विशाल सत्संग आयोजित हुए। सत्संग का कार्यक्रम तो सायंकाल हुआ करता था। 27 और 28 जुलाई को प्रात:काल सुरत-शब्द योग की विधि से सुमिरन, ध्यान, भजन का शिविर लगा। इन तीन दिनों के दौरान गीता भवन के अलावा श्री वख्शी सिंह जी के निवास स्थान पर भी एक विशेष सत्संग आयोजित हुआ। यहाँ पर यह बता देना जरूरी है कि श्री किशोर गुप्ता जो गीता भवन के सेक्रेटरी हैं और गीता भवन के अध्यक्ष श्री ओम प्रकाश शर्मा ने सत्संग के आयोजन का कार्यभार सम्भाला और सारे कार्यक्रम को वीडियोकैसिट में रिकार्ड भी कराया। श्री किशोर गुप्ता के बड़े भाई श्री जगदीश चन्द्र गुप्ता और श्री दसौंदा सिंह हर बार मेरे दौरे पर इंगलैण्ड में क्रियाशील रहते हैं। इस बार उन्होंने मानवता मन्दिर की ओर से गीता भवन में परम दयाल जी महाराज की शताब्दी के उपलक्ष्य में बड़ा भारी भण्डारा किया।

श्री जगदीश चन्द्र गुप्ता की बड़ी लड़की वीना गुप्ता ने और श्री किशोर गुप्ता की पत्नी आशा गुप्ता ने भी सारे कार्यक्रम में सहयोग दिया। इन सभी की मानवता धर्म के प्रचार में गहरी रुचि है। बहुत शीघ्र ही इंगलैंड में अन्तर्राष्ट्रीय मानवता परिषद् की स्थापना होने वाली है। 28, सायं 29 और 30 जुलाई प्रात: तक हम डा. के. एम. खुराना और श्रीमती कल्पना खुराना के पास मानचैस्टर में रहे। 30 जुलाई सायंकाल श्री किशोर गुप्ता हमें कार के द्वारा पुन: बर्मिघम ले आये। उसी सायंकाल को हम लंदन पहुँच गये। रात 7 बजे से 10 बजे तक हंसलो में श्री गुरमीत सिंह जी के घर सत्संग हुआ और 31 जुलाई को एक बजे दोपहर हम T.W.A. की उड़ान से लंदन से न्यूयार्क के लिए रवाना हो गये।

श्रीमती थैल्मा कार्टर हमारे स्वागत के लिए प्रात:काल से न्यूयार्क के हवाई अड्डे पर प्रतीक्षा कर रही थी। वह हमें अपनी कार के द्वारा अपने घर बाल्टीमोर ले गईं। यद्यपि हम 4 बजे सायंकाल तक न्यूयार्क पहुँच चुके थे तथापि चलते-२ हमें 7 बज गये। इसके फलस्वरूप हम रात को एक बजे तक थके हुए बाल्टीमोर पहुँचे। दूसरे दिन प्रात:-काल हम 8-30 बजे डा० राबर्ट मैकीवन और श्रीमती जूडी मैकीवन के निवास स्थान पर वाशिंगटन के क्षेत्र में Arlin-gton नगर में पहुँचे। यहाँ पर एक बड़े हाल में 9 से 3 बजे तक सत्संग आयोजित था। इसी प्रकार दूसरे दिन भी सत्संग तथा साधना शिविर था। यहाँ पर 4 अगस्त तक हम व्यस्त रहे और उसी शाम को हवाई जहाज़ द्वारा क्लीवलैंड के लिए रवाना हो गये। रात को करीब साढ़े 10 बजे हमारा ज्येष्ठ पुत्र डा. अरुण जेतली हवाई अड्डे से हमें अपनी पत्नी मंजु के सहित लेने आया हुआ था। 5 अगस्त को क्लीवलैंड रहने के बाद हम 6 अगस्त

प्रात:काल ग्रीनवे विसकैन्सिन के लिए रिपब्लिक एयर लाइन्स की उड़ान से रवाना हो गये। ग्रीनबे और क्लोवलैंड के समय में एक घण्टे का अन्तर है जिसके फलस्वरूप ग्रीनवे का समय पीछे रहता है। हमें रास्ते में शिकागो पर हवाई जहाज़ बदलना पड़ा। यहाँ पर दो घण्टे की प्रतीक्षा के दौरान में एक नया अनुभव हुआ। यूं तो अमेरिका में सार्वजनिक स्थानों पर और घरों में बाथरूम और प्रसाधन के कमर बहुत स्वच्छ होते हैं। इस बारे जब मैं प्रसाधन के लिए शिकागो के हवाई अड्डे पर बाथरूम गया तो हाथ धोने वाले स्थान पर मुझे टूटी तो दिखाई दी किन्तु उसको दबाने का कोई तरीक़ा या बटन नज़र न आया। ज्यों ही मैं उस टूटी के सामने खड़ा हुआ टूटी अपने आप चलने लगी। हाथ धोने के बाद मेरे हट जाने पर टूटी बन्द हो गई। मैं यह सब कुछ सत्संगियों की सूचना के लिए इसलिए लिख रहा हूँ ताकि भारतवासियों को यह ज्ञान हो जाये कि पश्चिम ने अपनी सुरत को भौतिक साधनों की उन्नति में लगाकर किस प्रकार भौतिक जीवन को सुखी बनाने की कोशिश की है। मैंने आपको यह पहले भी बताया था कि नई कारों में ऐसी मशीनें लगी हैं जो उस समय बोलने लगती हैं जब हम कार में बैठकर पेटी लगाना भूल जायें या भूल से दरवाज़ा खुला छोड़ दें। इस सम्बन्ध में मैं दो बातें और कहना चाहता हूँ।

जब 5 दिन के बाद हम श्री अजीत कुमार के घर से हवाई जहाज़ के द्वारा अपने छोटे लड़के डा. प्रियदर्शी जेतली के पास Bloomington Indiana पहुँचे तो वहाँ एक और विचित्र मशीन देखी। इस शहर में बिजली की लिफ्ट बनाने का O.T.I.S. नाम का बड़ा भारी कारखाना है। भारत में और विश्व भर में इसी कारखाने की बनी हुई

लिफ्टें लगी हुई हैं। इस कारखाने में सब काम स्वचालित यन्त्रों से होता है। मान लीजिये कि आप एक भवन के लिए विशेष लम्बी-चौड़ी बिजली से चलने वाली लिफ्ट बनवाना चाहते हैं आप O.T.I.S. के कारखाने में जायें और मैनेजर को बता दें कि आप कितनी बड़ी और किस आकार की लिफ्ट निर्मित कराना चाहते हैं। वह मैनेजर आपके सामने कुछ कलों को दबा देगा और दो घण्टे के अन्दर आपकी इच्छानुसार लिफ्ट बनकर तैयार हो जायेगी। इस प्रकार की स्वचालित मशीनें हर उद्योग में काम में लाई जा रही हैं। इसी सिलसिले में मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि कैलीफोर्निया में बड़ी-२ दुकानों पर जिस मशीन के द्वारा आपके खरीदे हुए सामान की सूची बनाई जाती है वह विचित्र रूप से स्वचालित बना दी गई है। पहले तो मैंने आपको बताया कि जब आप 20 अलग-२ वस्तुएँ खरीद कर मशीन द्वारा सूची बनाने वाली और पैसे लेने वाली कार्य-कर्ता महिला के पास जाते हैं, तो वो महिला हर वस्तु को एक जलते हुए बल्ब पर गुज़ारती है और मशीन पर अपने आप हर वस्तु की ठीक कीमत लिखी जाती है। अब तो इसमें भी उन्नति हो गई है। इस बार मैंने देखा कि जब वह महिला हरएक वस्तु को बल्ब के ऊपर से गुज़ारती थी तो मशीन से आवाज़ आती थी टमाटर सूप के चार डिब्बे—कीमत एक डालर। इसी प्रकार हरएक वस्तु की अलग-2 कीमत मशीन ने बोलने के द्वारा घोषित की ताकि ग्राहक को पता चलता रहे कि वह किस भाव से सामान खरीद रहा है। इन सब बातों को बताने का अभिप्राय यह है कि स्वचालित मशीनों के इस्तेमाल से एक तो आसानी और बचत होती है दूसरे ग्राहक को धोखा नहीं दिया जा सकता। जिन लोगों ने पश्चिम की इन अच्छाइयों का अनुभव नहीं

किया है वे इस भ्रान्ति में हैं कि पश्चिम में केवल ऐशो-आराम है और रूहानियत का नाम नहीं है। किन्तु मेरा अनुभव यह है कि वहाँ पर झूठ, निन्दा और चुगलखोरी नहीं है। इन्हीं बातों को देखते हुए परम दयाल जी महाराज ने मुझे 1968 में लिखा था "अमेरिका बौद्धिकता में बहुत ऊँची तरक्की पा चुका है। अब वह भौतिक आराम की चोटी पर पहुँच चुका है बल्कि उससे थक चुका है इसलिए अमेरिका वाले रूहानियत में बहुत जल्दी तरक्की करेंगे। जब एक मनुष्य दिन भर सख्त मेहनत करके थक जाता है तो उसे रात को गहरी नींद का आनन्द मिलता है। यही हाल अमेरिका का होगा। भौतिकता की पराकाष्ठा पर पहुँच कर उन्हें रूहानियत में तरक्की करने की ज़बरदस्त इच्छा होगी। इसलिए तुम अमेरिका में दर्शनशास्त्र पढ़ाने के साथ-2 उन लोगों को रूहानियत की तालीम दो।"

परम दयाल जी महाराज की इस आज्ञा का पालन तो मैं करता रहा। उनके चोला छोड़ने के बाद उनके अन्तिम आदेश के अनुसार ही मैं देश-विदेश में सत्संगों में अपना अनुभव बाँट रहा हूँ। इसी में मुझे आत्मानन्द की अनुभूति होती है। ग्रीनवे में तीन-चार सत्संग हुए उनमें हर धर्म के भारतीय और अमेरिकन सम्मिलित हुए। यहाँ पर श्री अजीत कुमार के नये भवन पर आयोजित गृहप्रवेश के सत्संग की व्याख्या देना आप सब के लिए रोचक और लाभदायक होगा। श्री अजीत कुमार का सारा परिवार विशिष्ट रूप से परम दयाल जी के साथ और मेरे साथ सम्बन्धित हैं।

इनके बच्चे सभी परम दयाल जी के सम्पर्क के कारण आज्ञाकारी हैं और सन्तमत के अनुयायी हैं। अजीत कुमार जी के ज्येष्ठ पुत्र अजय कुमार ने दो वर्ष पूर्व इंजीनियरिंग की शिक्षा पूरी करके गिलवाकी नगर में बिजली घर में

अच्छी नौकरी प्राप्त कर ली थी। वहाँ पर इसका सम्पर्क एक अमेरिकन लड़की होली से हुआ जो स्वभाव की बहुत ही अच्छी है और धन की दृष्टि से बहुत उदार है। यह लड़की उपाधि प्राप्त नर्स है। अजय के माता-पिता ने भी इस लड़की को स्वीकार कर लिया है। गृहप्रवेश के सत्संग पर इनकी सगाई का आयोजन किया गया। कुमारी होली ने साड़ी और भारतीय आभूषण पहने हुए थे और बिलकुल भारतीय कन्या लगती थी। मैंने स्वयं इन दोनों को आशीर्वाद दिया, मिठाई खिलाई और सगाई की रस्म अदा की गई। सभी उपस्थित सत्संगी और अतिथि इस अवसर पर बहुत ही प्रसन्न हुए। मैंने कुमारी होली को भारतीय नाम हेमा दिया। 11 अगस्त को हम ग्रीनवे से हवाई जहाज़ द्वारा इण्डियाना पौलिस पहुँचे। यहाँ पर हमारा छोटा लड़का डा. प्रियदर्शी जेतली हवाई अड्डे पर हमें लेने आया हुआ था। प्रियदर्शी इण्डियाना प्रान्त में ब्लूमिंगटन नगर में रहता है जहाँ उसने इण्डियाना विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र विभाग में Ph D. की उपाधि प्राप्त की है।

हम यहाँ पर 4 दिन रहे। इण्डियाना विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों से व्यक्तिगत मुलाकात हुई। 13 अगस्त को ब्लूमिंगटन नगर की एक आध्यात्मिक संस्था कौमन वैल्थ में रात्रि को समाधि, ध्यान पर सत्संग आयोजित हुआ। इसका आयोजन करने वाली महिला ने पहले से ही इस सत्संग की सूचना दे रखी थी। इसलिए सत्संग के समय सारा भवन श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। इस सत्संग में मैंने सुरत-शब्द योग की विधि पर प्रकाश डाला और उस पर अमल करने की तरकीब भी बताई। इस केन्द्र की संचालिका ने बहुत प्रशंसा की और कहा कि हर वर्ष मेरे ब्लूमिंगटन आने पर साधना शिविर लगाया जाना चाहिए।

करीब 60 व्यक्तियों ने समाधि लगाई और सभी को प्रकाश का अनुभव हुआ।

दूसरे दिन हमें प्रियदर्शी ब्लूमिंगटन नगर के कई स्थानों पर ले गया। उसी दिन हमने ब्लूमिंगटन नगर में स्थित एक ऐसा कारखाना देखा जहाँ पर लिफ्टें बनाई जाती हैं और जिसका ज़िक्र मैंने पहले कर दिया है। ऐसे कारखानों के कारण मनुष्य की सुविधा के लिए कम से कम परिश्रम करने पर भी नये से नये आविष्कार निकल रहे हैं। कम्प्यूटरों का युग आ गया है अब तो भारत में भी कम्प्यूटर बन रहे हैं। कम्प्यूटर मनुष्य के मस्तिष्क से भी ज़्यादा गणित का और याददाश्त का काम कर सकता है। इसी कम्प्यूटर की शैली को अपनाकर विशेष कर पश्चिम में तकनीकी ज्ञान की बहुत उन्नति हुई। हस्पतालों में ऐसे कम्प्यूटर लगे हैं जिनके द्वारा बीमारियों का निदान बहुत जल्दी और ठीक-ठीक होता है। आगे आने वाले 50 वर्षों के अन्दर गाँव-गाँव के अन्दर कम्प्यूटरों की तकनीक पहुँच जायेगी। इसमें भौतिक सुविधा तो बहुत मिलेगी किन्तु इतना ज़्यादा मशीनीकरण मानवता के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। मनुष्य भी मशीनों की भाँति सजीव प्यार करने वाले व्यक्ति न होकर निर्जीव मशीन की भाँति ही व्यवहार करने लगेंगे। तकनीकी युग की इन त्रुटियों को दूर करने का एक मात्र उपाय मानवता धर्म का प्रचार है। 15 अगस्त को हम दोपहर को प्रियदर्शी के द्वारा संचालित नई कार में ब्लूमिंगटन से डेटन ओहायो रवाना हो गये।

यहाँ पर हमें डेटन में डा. हैरी फ्रोनिस्टा के घर जाना था। इसको हम प्यार से हैरी ही बुलाया करते हैं। जब भी परम दयाल जी महाराज वर्जिनिया में आते थे तो हैरी एक हज़ार मील दूर से महाराज जी के सत्संग सुनने के लिए

हवाई जहाज़ से या कार से आया करते थे। हैरी का हमारे से बहुत प्यार है। सन् 1972 में महाराज जी के पहले दौरे के बाद जब मैं भारत आने के लिए तैयारी कर रहा था तो डा. हैरी डेटन से खासकर मुझे मिलने के लिए आया और उसने कहा कि मैं केवल आपको मिलने और तैयारी कराने में सहायता देने के लिए आया हूँ। हैरी की पत्नी और उसकी पाँचों बेटियाँ हमारे परिवार से बहुत घनिष्ठ प्यार करती हैं। डा. हैरी डेटन नगर में एक बहुत सफल डाक्टर है और उसका परम दयाल जी और मुझमें अगाध विश्वास है। वास्तव में हैरी का परिवार उस मानवता परिवार का एक आदर्श नमूना है जो भारत से अमेरिका तक और इंगलैंड से वेस्टइण्डीज़ तक फैला हुआ है और जिसमें प्रेम का राज्य और सत्य का व्यवहार मुख्य हैं। यदि कोई सत्संगी कभी भी अमेरिका जाये तो वह हैरी के परिवार में ऐसे ही रह सकता है जैसे वह अपने निकटतम सम्बन्धी के घर में रहता हो। मेरे बहुत से भारतीय अतिथि इस परिवार के आतिथ्य और सत्कार से लाभान्वित हुए हैं। न ही केवल इतना बल्कि हैरी को परम दयाल जी के कारण और मेरे कारण भारत से इतना प्यार है कि उसने अपने चिकित्सालय में एक भारतीय डाक्टर और उसकी पत्नी को अपना भागीदार बना लिया है।

इसी भारत के प्रेम से और हमारे पारिवारिक सम्बन्ध से प्रभावित होकर 1975 के वसन्त के आस-पास फरवरी के अन्त में हैरी ने मुझे अमेरिका से उदयपुर टैलीफोन किया और कहा कि वह हमें मिलने के लिए कुछ ही दिनों में भारत आने का इरादा रखता है। दो दिन के बाद हैरी ने हमें ताजमहल होटल बोम्बे से टैलीफोन किया और कहा मैं आपको मिलने के लिए भारत आ गया। दूसरे दिन हैरी

और उसकी पत्नी सिल्विया को हम प्रात:काल उदयपुर हवाई अड्डे पर लेने के लिए गये। उनका उदयपुर में निवास बहुत अच्छा रहा हमने उन्हें निवार मण्डलेश्वर श्री मुरलीमनोहर शरण निम्बार्क सम्प्रदाय के महन्त जी से मिलाया और उन्हें श्री नाथद्वारा मन्दिर में भी ले गये। मुरलीमनोहर शरण जी महाराज बहुत उदार और विद्वान् आचार्य हैं। उनके बारे में मैं आपको फिर कभी व्याख्या-पूर्वक सूचना दूंगा। यहाँ पर इतना कह देना पर्याप्त होगा कि अमेरिका से जब-२ भी आध्यात्मिक व्यक्ति भारत में आये वह श्री मुरलीमनोहर शरण जी से बहुत प्रभावित हुए।

चार दिन के बाद हम हैरी और सिल्विया को जयपुर ले गये वहाँ भी वह राजस्थान के गवर्नर आदि से मिले और हमारे साथ देहली आ गये। अमेरिका जाने से एक दिन पहले हैरी ने इच्छा प्रकट की "यदि परम दयाल जी महाराज के दर्शन हो सकें तो उसका सौभाग्य होगा।" मुझे उस समय कुछ मालूम नहीं था कि परम दयाल जी महाराज कहाँ होंगे। मैंने हैरी और सिल्विया को कहा 'यदि तुम्हारा सौभाग्य है तो परम दचाल जी तुम्हें दर्शन देने के लिए प्रकट हो जायेंगे।" मैंने सोचा कि परम दयाल जी महाराज के प्रोग्राम के बारे में श्री नन्द लाल जी से पूछा जाये। हम 6 बजे सायंकाल टैक्सी में श्री नन्द लाल सचदेव के घर गये। वह वहाँ पर नहीं थे। हमें पता लगा कि वह परम दयाल जी के साथ उन्हें होशियारपुर के लिए कश्मीर मेल पर छोड़ने के लिए देहली स्टेशन गये हुए हैं। परम दयाल जी महाराज हमेशा रेलगाड़ी पर घण्टे-दो घण्टे पहले ही पहुँच जाया करते थे। हम तुरन्त देहली जंक्शन स्टेशन पर पहुँचे होशियारपुर का डिब्बा लग चुका था। परम दयाल जी Ist Class के डिब्बे में सो रहे थे। जैसे ही मैं, हैरी, सिल्विया डिब्बे में घुसे, गोपाल दास जी चिल्ला उठे "महाराज जी

सो रहे हैं; आप बाहर चले जाइये।" मैंने प्रेम से कहा "गोपाल दास जी ! ये डा. हैरी हैं परम दयाल जी इन्हें जानते हैं।" मेरा इतना कहना था कि परम दयाल जी तुरन्त उठ बैठे और कहने लगे "मेरे प्यारे हैरी तुम यहाँ कैसे" ? हैरी और सिल्विया ने महाराज जी के पाँव छुए। हैरी ने कहा "हम केवल आपके दर्शनों के लिए देहली आये थे।" हैरी और सिल्विया को परम दयाल जी की यह मुलाकात हमेशा याद रही। इसके बाद जब-२ भी परम दयाल जी अमेरिका में जहाँ भी आये हैरी का परिवार उन्हें मिलता रहा। 1978 में परमदयाल जी महाराज डेटन भी गये थे।

16 अगस्त को हम क्लीवलैंड पहुँच गये। 17 अगस्त को हमारे बेटे डा. अरुण और उनकी पत्नी मंजु ने घर पर करीब दो सौ मेहमानों को बुलाकर उन्हें पार्टी दी और एक प्रकार का सत्संग भी हो गया। वास्तव में इस अवसर पर हमारे सभी अमेरिका में रहने वाले सम्बन्धी और क्लीवलैंड के प्रतिष्ठित व्यक्ति, डाक्टर, प्रोफेसर, इंजीनियर और वकील आदि इस पार्टी में सम्मिलित हुए क्योंकि यह दिन अरुण और मंजु के विवाह की वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में मनाया गया था।

इसके बाद अमेरिका के दौरे में जो घटनाएँ हुईं उनका विवरण अगले मासिक सन्देश में दिया जायेगा।

'तपः' के सम्बन्ध में मैंने आपको बताया था कि वचन सम्बन्धी तपः में उद्वेग करने वाले वाक्य नहीं बोलने चाहिएँ। इसके विपरीत हमारी भाषा में मधुर शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। हम जो कुछ भी कहें दूसरे के हित के लिए कहें। शिवसंकल्प भी इसी नियम पर आधारित है। संकल्प तो मन से किया जाता है किन्तु संकल्प की अभिव्यक्ति शारीरिक कर्म से भाषा से की जाती है। यह तो सब जानते

हैं कि हमारा कर्म ऐसा होना चाहिए कि हम किसी को शारीरिक दुःख न दें। मैं हमेशा कहा करता हूँ कि माताओं को कभी भी बच्चों को पीटना नहीं चाहिए। मनोविज्ञान की खोज यह बताती है कि जिन छोटे बच्चों को माताएँ समझाने की बजाय उनकी त्रुटियों को दूर करने के लिए पीटा करती हैं वे बच्चे बड़े होकर स्त्री जाति से घृणा करते हैं। न ही केवल इतना बल्कि ऐसे बच्चे पढ़ाई में भी पिछड़ जाते हैं। जैसे कि मैंने पहले कहा है शरीर का घाव तो कुछ दिनों में भर जाता है किन्तु कटु शब्दों का मानसिक घाव ना ही केवल देर से भरता है बल्कि उसका परिणाम भयानक भी हो सकता है।

वाणी या भाषा हमारे मन से निकलती है इसलिए वह मनुष्य के मन का आईना भी होती है। भर्तृहरि ने जिन्हें गोपीचन्द भर्तृहरि भी कहते हैं लिखा है कि वाणी मनुष्य का सबसे बड़ा भूषण होती है। मीठी वाणी बोलने वाला व्यक्ति स्वभाव से कर्म में भी मीठा ही रहता है और किसी की हानि नहीं करता। इसी प्रकार वह मन से भी किसी का बुरा नहीं चाहेगा। वाणी शारीरिक कर्म के मुकाबले में सूक्ष्म होती है इसलिए उसका अच्छा या बुरा प्रभाव बहुत गहरा पड़ता है। जिस सच्चाई को हम कटु शब्दों में न कहकर मीठे वचनों से व्यक्त करते हैं, वह सच्चाई सबको पसन्द आती है किन्तु कटु शब्दों में कही गई सच्चाई मन पर बुरा प्रभाव डालती है और वह कटु शब्द बोलने वाले और सुनने वाले दोनों को हानि पहुँचाती है। इसलिए मधुर वाणी जो प्रिय और हितकारी होती है सबसे ऊँचा वाणी का तप है।

वाणी को बोलने में और लिखने में व्यक्त किया जाता है जिस वाणी को हम पढ़ते हैं उसे स्वाध्याय कहा जाता है।

जिस वाणी का अध्ययन या पठन-पाठन वाङ्मय तप
कहा जाना चाहिए वह आम पुस्तकों में नहीं मिलती वह
नकों में—वेदशास्त्रों में और सतपुरुषों
है जो आध्यात्मिक
है। सबसे अच्छा
। पढ़ना है। सन्तों
स स्वाध्याय के बारे
रे में अगले मासिक

बको इस महीने की
हूँ कि आपका शरीर
ा सदैव आनन्दमय रहे।

आपका फकीरमय
मानव

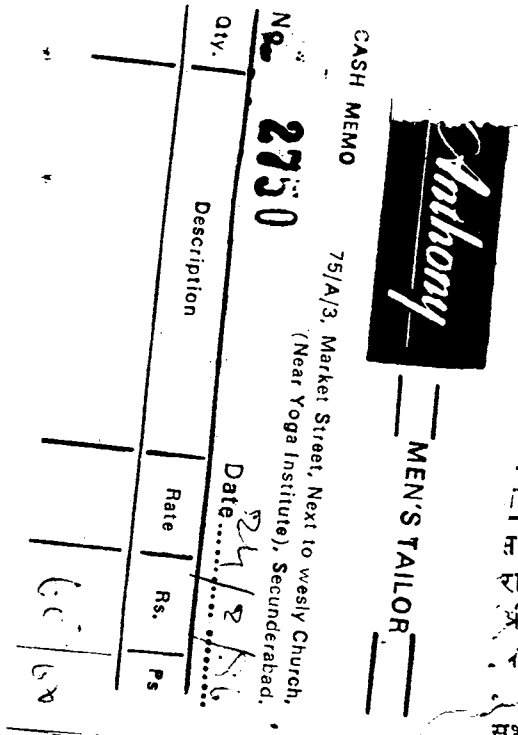

ार

सत्संगियों को सूचित किया
राज के शिष्य एवं परम
श्री शिव कुमार लाल जी,
वासी काशी में 15 दिन
परमधाम सिधार गये।
सभी सत्संगी उनके निधन
पर हार्दिक
हुए परम पिता राधास्वामी
दयाल से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को चिरशान्ति
प्रदान करें तथा उनके शोकाकुल परिवार को इस असह्य
दुःख के सहन करने की शक्ति दें।

जनरल सेक्रेटरी

विश्व समाचार समीक्षा

विगत वर्ष में विश्व की सामान्य स्थिति ऐसी रही जिसमें आतंक, हिंसा, मध्य-पूर्व में धार्मिक युद्धों तथा मार-काट का प्रभुत्व रहा। दक्षिण अफ्रीका और अमरीका के विभिन्न देशों में हिंसात्मक गतिविधियों ने ज़ोर पकड़ा। दक्षिण अफ़्रीका में जातिवाद पर आधारित घृणा की समस्या आज भी भीषण रूप धारण किये हुए है। सफेद चमड़ी वाले अल्पसंख्यक लोगों की हुकूमत बहुसंख्यक काले नागरिकों पर भीषण अत्याचार कर रही है। यह नग्न क्रूरता, हिंसा और धर्म तथा राजनीति के नाम पर निरन्तर युद्ध का दूषित वातावरण खत्म होना चाहिए। यदि विश्व के विभिन्न भागों में सुलगती युद्ध की ज्वाला इसी तरह धधकती रही तो असम्भव नहीं कि वह तीसरा विश्व-युद्ध छिड़ जाये जो इस धरा पर अन्तिम युद्ध इसलिए होगा क्योंकि इसके आणविक विस्फोटों के कारण पृथ्वी-नक्षत्र पर जीवन-तत्त्व का सदा के लिए विनाश हो जायेगा। इसके परिणामस्वरूप न तो विजेता, न पराजित, न आक्रामक और न आक्रांत ही जीवित बच सकेगा।

इन परिस्थितियों का एकमात्र समाधान यह है कि एक सच्चे मानववाद को विश्व के सभी नागरिकों द्वारा, बिना किसी प्रकार के जाति, धर्म, राष्ट्रीयता या राजनैतिक भेद-भाव के, हृदय से अपनाया जाये। मानव सबसे पहले मानव है और बाद में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, सिख या जैन इत्यादि होता है। सभी धर्म ईश्वर-प्रेम और उस मानव से प्रेम का दम भरते हैं जो वास्तव में इस धरती पर जीता-जागता ईश्वर का स्वरूप है। ईश्वर और मानव के प्रति

प्रेम के दो सिद्धान्तों को जीवन में अपनाने से ही परस्पर प्रेम, समता, सद्भावना, अन्तर्राष्ट्रीय सहनशीलता और पृथ्वी पर स्थायी शांति का साम्राज्य हो सकता है।

"मानव मन्दिर" पत्रिका में जितने भी निबन्ध और सत्संग प्रकाशित होते हैं, उनका उद्देश्य ऐसी ही सच्ची मानवता को विश्व-मानव के मन में पनपाना है जिसे सहज ही व्यावहारिक जीवन में लागू किया जा सकता है और जो किसी भी मनुष्य को उसके धार्मिक विश्वास या राजनैतिक दृष्टिकोण को त्यागने पर मजबूर नहीं करती। इस पत्रिका का "मानव मन्दिर" नाम ही यह इंगित करता है कि मानव स्वयं ही ईश्वर का जीवित जागृत मन्दिर है। यदि वह इस मन्दिर को प्रेम और शिवसंकल्प के द्वारा शुद्ध-पवित्र रखे तो वह परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व में शान्ति और समता का प्रसार कर सकता है।

—मानव दयाल

आवश्यक सूचना

उन सभी सत्संगियों को यह सूचना दी जा रही है जिन्होंने देहली के निकट मानवता नगर में प्लाट लेने के लिए आवेदन पत्र दिये थे। इस सम्बन्ध में यह सूचित किया जाता है कि पुरानी देहली से 27 कि. मी. और नई देहली (कनाट प्लेस) से 28 कि. मी. और गाजियाबाद से 7 कि. मी., हापुड़ रोड पर ज़मीन का इन्तज़ाम हो गया है। देरी इसलिए लगी है, क्योंकि ज़मीन के बारे में पूरी छान-बीन की गई हैं इसके अतिरिक्त देहली के 25 कि. मी. के अन्दर अन्दर हरियाणा और उत्तर प्रदेश की हद में सभी भूमि सरकारी दफ्तरों के लिए भारत सरकार द्वारा नियत कर दी गई है और मानवता नगर की भूमि इस हद से बाहर है।

इस भूमि के लिए आवेदन पत्र बहुत ज्यादा आ चुके हैं, जब कि हमारे पास सौ से अधिक प्लाट नहीं हैं। इसलिए प्लाट के इच्छुक सत्संगियों को सूचना दी जाती है कि वे प्लाट की अपेक्षित कीमत तीस हज़ार का दसवां भाग यानि तीन हज़ार रुपये 27 दिसम्बर '86 तक बैंक ड्राफ्ट के द्वारा भेज दें ताकि उचित कार्यवाही की जाये। ड्राफ्ट :— 'Secretary International Society of Humanism' के नाम से बना हुआ होना चाहिए। जो सत्संगी बाद में प्लाट लेना नहीं चाहेंगे उनका ड्राफ्ट उन्हें वापस दे दिया जायेगा। यह ड्राफ्ट अति जल्दी नीचे दिये गये पते पर भेज दें :—

पता : Sh. Rishi Parkash Gupta
O-41, Vijay Vihar,
Uttam Nagar, New Delhi-110059

ड्राफ्ट रजिस्ट्री द्वारा भेजें बाकी रकम दूसरी किश्त में 30 मार्च '87 तक जमा करनी होगी।

इस सम्बन्ध में याद रहे कि सत्संगी भविष्य में इस प्लाट को किसी गैरसत्संगी को नहीं बेच सकेंगे। केवल सोसाइटी को ही बेच सकेंगे।

जनरल सेक्रेटरी

आवश्यक सूचना

परमसन्त परम दयाल जी महाराज की शताब्दी समारोह के सिलसिले में, परमसन्त हज़ूर मानव दयाल जी महाराज के इस वर्ष देश-विदेश के दौरे के क्रम में सारे विश्व में नये केन्द्र स्थापित हुए हैं। मानवता धर्म और अध्यात्म प्रेमी जनों की संख्या दिनोंदिन अत्यधिक बढ़ती जा रही है। साथ ही पत्र-व्यवहार का काम भी पहले की अपेक्षा कई गुणा ज़्यादा बढ़ गया है। इन कारणों से हज़ूर मानव दयाल

जो महाराज भारत और विदेशों के सभी केन्द्रों का दौरा प्रति वर्ष नहीं कर सके।

अतः सभी केन्द्रों के अधिकारी बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि आगामी जनवरी, फरवरी और मार्च 1987 के वसन्त के सत्संग दौरे में जो केन्द्र हज़ूर मानव दयाल जी महाराज के सत्संग के लिए उन्हें निमन्त्रित करना चाहते हैं वे अपने निमन्त्रण-पत्र अपने केन्द्र की ओर से तारीख 30 दिसम्बर 1986 तक मेरे पास अवश्य भेज दें ताकि वहाँ के दौरे की व्यवस्था समय से नियमित रूप में कर दी जावे।

जिस केन्द्र से निमन्त्रण-पत्र नहीं आवेगा, वहाँ हज़ूर मानव दयाल जी महाराज का दौरे का प्रोग्राम इस वर्ष नहीं बन सकेगा। पिछले वर्ष आन्ध्र प्रदेश से अनेक सत्संगियों की शिकायतें आई थीं कि हज़ूर महाराज जी उनके केन्द्रों पर नहीं आते। हज़ूर महाराज किसी को भी निराश नहीं करना चाहते इसलिए आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा अन्य सभी केन्द्रों के अधिकारियों से प्रार्थना है कि वे हज़ूर मानव दयाल जी महाराज को बुलाने का निमन्त्रण उपर्युक्त समय के अन्दर-अन्दर सीधे मुझ निम्न पते पर भेजें। तभी उन केन्द्रों का दौरा-प्रोग्राम बनाया जा सकेगा।

एस. एल. सेठी
जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर, होशियारपुर।

मानव मन्दिर के सभी पाठकों से निवेदन

"मानव मन्दिर" पत्रिका दिन-प्रतिदिन हरदिल-अजीज़ होती जा रही है। इसके पढ़ने-वालों की संख्या नौ हज़ार (9000) के लगभग पहुँच चुकी है। मालिके कुल पूर्ण धनी

परमसन्त परम दयाल पं. फकीर चन्द जी महाराज ने इस पत्रिका को चला कर जीवों का बड़ा भारी उपकार किया है। मैं उनकी आज्ञा के अनुसार इस पत्रिका को लगातार छपवा रहा हूँ और सभी सत्संगियों को, परम दयाल जी महाराज की इच्छा के मुताबिक यह पत्रिका नि:शुल्क भेजी जाती है। महंगाई और इस पत्रिका की बढ़ती हुई माँग के कारण इसका सालाना खर्च 2 लाख रुपये से अधिक हो रहा है।

परम दयाल जी इस बारे में अपील किया करते थे कि जो लोग यह महसूस करते हैं कि यह पत्रिका सबके लिए लाभदायक है वे अपनी शक्ति के अनुसार आर्थिक सहायता दे सकते हैं।

मैं भी परम दयाल जी महाराज के पदचिन्हों पर चलते हुए आप सबसे अनुरोध करता हूँ कि आप यथाशक्ति और अपनी दिली इच्छा के अनुसार इस शुभ कार्य में हमारा हाथ वटायें। मैं फिर यही कहूँगा कि आप अपने घर के खर्च और आवश्यकताओं पर खर्च में से काट कर अनुदान न भेजें। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आप सब इस ज्ञान गंगामय पत्रिका से लाभ उठायें ताकि आपका लोक और और परलोक दोनों बन जायें। मैं आप सबको सद्भावना, प्रेम और दिली आशीर्वाद देता हूँ।

आपका फकीरमय
मानव

नोट :—आर्थिक सहायता हो सके तो ड्राफ्ट या चैक के ज़रिये भेजें। मनीआर्डर से भी भेज सकते हैं। यह पैसा भेजते समय एक नोट अवश्य लिखें कि यह पैसा केवल मानव मन्दिर पत्रिका के लिए ही भेजा जा रहा है।

———

ENGLISH SECTION

Of

Manav Mandir

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

Dec. 10th, 1986.
MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur, (Pb.) India

INTRODUCTION

OF

Light on the Anand-Yoga

by

Data Dayal Maharshi

Shivbrat Lal Ji Varman

M A., LL.D.

Yog in its literal sense means : junction, combination, conflux, or meeting. It comes from Sanskrit word 'yuj' (to join). In its primary and secondary meaning there is no difference at all. Harmony or concordance, also, is a sort of Yog or Union. When religious meditation is aimed at, the mind is fixed in something abstract with which it gets bound or tied-up. This is also Yog or Union.

Like other conditions, it has also different stages. They are nothing but expressions of the degrees of connection with the object of connection. When you are living in a tract or country watered or drained by a certain river, you are in a way united with it. For, living in the basin of that river, you cannot but drink in or absorb the moisture that pervades throughout the atmosphere surrounding it. You live in it, and in

a way, are situated within its influence. In Sanskrit this is called 'Salok-Yoga' i.e. being united with a particular Zone. Again, when you come into the vicinity of river, the degree of union is comparatively enhanced. The moisture thickens into a raised state of humidity and not only are you affected and influenced by it but really you live in close contact with its watery condition. This union or affinity or closeness in Sanskrit is called 'Samep-Yoga' or union of nearness. Likewise when you have dived or plunged yourself in the river, you get surrounded by its water on all sides. Water is below, above, right and left of you. From tip to toe your body is drenched in the element which has not become now an external covering only but it has entered or soaked into your body through the various pores of its various limbs. No doubt there is difference between you and the water but apparently you appear to be formed of it just like a fish in a pond. In Sanskrit this is termed 'Sarup. Yoga' i.e., having the same form.

After these three comes the intimate union which is likeness, similarity or identical union with the object aimed at. In this condition the soul of the man acquires the quality of identification and indentifies itself with it. In Sanskrit it is called 'Sayuj-Yog' this union may be termed Perfect Unification. It is the sum and substance of Yoga-philosophy. The Fourth Condition of Realisation which exceeds the Three Dimensions to be explained later on.

All these stages have been classified under :

'Hat-Yoga,' the union of individual-Physicality with the Universal-Physicality ;

inspired by a desire for union which leads to perfect liberation. His other qualifications are : the control of senses, abstinence from injury to all beings, mindful of doing good to the animate, purity of mind, faith and refuge in the Grace of the Supreme Father, Sat-Purûsh Radhaswami. He must avoid religious disputes, as every religious dispute is based on bigotry which is the mark of a narrow mind.

The attainment of Anand-Yoga, undoubtedly, leads to the Blissful state of Mind ; for it is performed in the Anand-mai Kosh (sheath of Bliss) The practice begins at the 'Ajanta-chakre,' which is situate betwixt the two-eye-brows (in the entrance to 'Sukshma-sharir' or subtle body). Speaking of the "Blissful state of Mind" we have to say here that there are various sorts of pleasures : physical, mental, intellectual and so on. The brutes have their happiness confined to the physicality and the physical, bodily, or outward pleasures. Man in this state is akin to the brute. A mental or intellectual man's happiness is different from that of the brute man. He is of a thinking mood of mind and he gets pleasure in thought, philosophy, ethics etc. The 'Anand-Yogi' is different from these. His happiness is Spiritual, the result of his concentration on the higher centres. The consciousness of this Spiritual happiness leads him farther and farther into the higher Spiritual regions and in the end he gets himself absorbed in the last stage which is 'Moksh' (liberation). Spiritual up-lift or Spiritual elevation begins from 'Ajnachakra', a necessary and detailed account of which will be found in the body of this treatise.

III

The individual Selves ('Jeev') are enclosed within and confined in the three regions : 'Para'-Brahmand,' 'Brahmand,' and 'Jevand' i.e. the 'Pind' or body. Likewise, the man is encased within and confined in three bodies : causal, mental, and gross—technically called 'Karana,- Sukshma-, and Sthula-, Sharirs-' In a similar way he finds himself bound with the fetters of the three-conditional consciousness called wakefulness, dreaminess, and dreamlessness, known among the mass of people as 'Jagrath-, 'Swapna-, Sushupti, Avasthas'.

As is the creature, so is the God. God is nothing but the binding-principle in Nature, whom, the people, of Radhaswami Faith, call "Kal" are "Maha-Kal". He is the Supreme Deity of all the so-called religions of the world. Bound as he is, he binds all. The idea of bondage comes from him and his 'Ahankar'. He is the ruler of the Universe and as long as the individual Self finds himself inhabiting His realm, he cannot dream of release from the fetters of the above conditions It is His Will that they (individual Selves) should remain bound.

Beyond these is the unconditional state of freedom which is technically termed 'Turiya-avastha'—Fourth condition—'Chautha-pad' (according to the Radhaswami Faith).

Radhaswami Faith lays much stress on the attainment of this unconditioned-condition of which few of these bound or fettered ones have any glimpse or reflection whatever. This is the Real ; and the Supreme Ruler of this has been termed Radhaswami Dayal. It is why some devout souls pray, in human language,

without knowing the purport of their prayer :—

"Our Father, Which art in Heaven,
Hallowed be Thy Name,
Thy kingdom come on Earth,
As it is in Heaven." etc. etc.

This prayer clearly shows that he who invented it, was to a certain extent conscious of the Reality, though he failed to bring to human mind the Truth inculcated by him.

The three-conditional realms in Nature, are only reflectionary images of the Real One. This Kingdom is the kingdom of Matter in its c usal, subtle, and gross form. The Real One is beyond these. It is, properly speaking, the Spirit-land where the Spirit rules Supreme. It is its undisputed kingdom bereft of Trinity, Duality, and Unity even. For, these are the various aspects of manifestation in Matter. The praying devotee aspires, with the inspired idea, of bringing down that unconditioned-condition, on this conditioned plane of existence, the mor al abode of the immortal souls. The devotee all the w hile repeats the formula of the unexplained and ambiguous, though not wrong, assertion of Unity-in-Trinity and, Trinity-in-Unity, without fixing or concentrating his attention on The Real Divinity within himself, and without gaining entrance into the Kingdom of God, that lies within his own Self.

Cause and effects have their origin in the Causeless One. How thi Causeless One affects or tends to become the cause and effects, is a Universal Riddle which is solved by the practice of the 'Anand-Yoga'

i.e. Union through Bliss.

IV

The subject is unfamiliar, and at every step there is the dread of its becoming tedious, which we want to avoid. Our aim is to present it in the most easy, practical, and interesting form to alleviate its tediousness and bring to the mind of the reader what we want to infuse into into it.

From the last, it will be evident that we feel surrounded with three dimensions : causal, subtle, and gross which we have enumerated as 'Para-Brahmand,' 'Brahmand,' and 'Pindand,' i.e., the Causal-Bodied-Universe, the Subtle-Bodied Universe, and the Gross-Bodied Universe. There can be no effect without cause and the cause pervades its effects in its various stages. Cause is one and its effects are two in this case at least, from obvious points of view The realm of effect, at least its gross aspect, is composite of so many details that it will be impossible for us to deliniate it in its various specified forms. We shall do this as we proceed further.

At the very outset, it should be noted that every universe, in its various items, is nothing but a reservoir or fountain head of the tiny drops that compose it. So, the Causal Universe, we may without any fear of contradiction say, is the source or spring of all the causes that are latent in it but find scope in the stages that follow and thus become patent. In the same manner, the Subtle Universe contains all the items of subtlities that get manifested in their manifold and detailed forms down below. Likewise, the Gross

Universe is the sourse of numerous grossities underlying it, that assume outward expressions in the course of evolutionary processes. The cause is the seed as it were, and the devolution, the involution, and the evolution are its various manifestations. It germinates, grows, over-grows and fractifies. The cause lies hidden in its effects So far, we think, we have explained this point satisfactorily ; and now for its details.

The animate objects are possessed of three consciousnesses, viz., wakefulness, dream, and absorption (sound sleep). This absorption (sound sleep) is cause. It is reversion to the original source. Everything has been swallowed up there, as the seed swallows the tree, branches, flowers, fruits, leaves, etc etc. It is the sum and substance of all that had become apparent. The dreamy process is the subtle state of manifestation. Everything in it is delicately crafted with nicety of distinctions. It may be likened unto the states of germination, sprouting, budding, vegetation, growth etc., inwardly, as the embodied. One observes, experiences, and experiments in hi introspection when engrossed in and with dreams. It is confined to the internal process of in growth. while wakefulness is the gradual progress externally, wherein the cause gets dense and visible to the naked eyes. The tiny drop, as it passes in this way from cause to gross attains the three sorts of appearances in born and inherent in it He thus gets awakened. gets dreamy, and gets absorbed in himself which states are linked with the tri-lateral reservoirs detailed above. It is here, in this tiny entity, that we find the Principle of One-in-Three and Three-in-One. It is Unity : it is Triplicity united into One.

MY SEARCH

by

Param Sant Param Dayal Faqir Chand Ji Maharaj

Thousands of instances have been brought to my notice in writing and verbally, where in, my form has appeared to different people at different places and at different times. Some saw me in their wakefulness while others have seen me either in their dream or in their abhyas. My manifested form guided them in their physical and mental troubles. But I never knew about these instances, until I was told or written to. What is the secret of these manifestations? These manifestations are not a Reality Whosoever has his faith in any guru, god, goddess or an ideal, the form of his or her idea also manifests to him or her It is the result of impressions and suggestions that our mind have accepted. And nothing from without comes to manifest. It is the miracle of your own concentrated mind.

Different devotees of different gods and goddesses see the manifestations of their own ideals. Some see Vishnu, others see Lord Rama and still others see the form of their own guru. Ask any Christian or a

Muslim, if they ever see lord Rama in their meditation, wakefulness or in dream. If Lord Rama is really all pervading then his immage or Holy form must also manifest invariably to Muslims and Christians as well. But his form appears to the Hindus alone. Why it is so ? Because Muslims and Coristians do not have any sanskar, of Hindu Gods. Similarly the form of Jesus Christ and Mohammed do not manifest to any Hindu, because Hindus do not have any sanskar of Jesus christ or Mohammed. Manifestations that appear to you, are the magnified forms of your own sanskaras. Nothing from without comes to manifest. It is the result of faith and belief of the individual.

I daily receive a heavy mail regarding such instances. In one instance, a student, while sitting in the examination hall remembered me because he was unable to answer the questions as they were difficult. He prayed for help. My form appeared and sat under his desk and dictated him all answers He secured very good marks. But I say it upon my honour that I never knew about that boy. Not to speak of him, I even do not know about the subject in which I dictated the answers (I am myself only a middle pass). Those who have faith in my word and those who think that I am a great saint, their faith works wonder for them, not me I remain unaware about all such instances that are attributed to me.

Once a Satsangi came to me and told, "If any body falls ill in our family, I do not go to any doctor, instead I pray to your Holiness. You appear and direct us to take a particular medicine. We purchase the

medicine from the bazar, take it and get cured." Where as when I am ill, I consult my doctor for the treatment. What is this? It is the work of faith and faith alone. This is my research.

Scientific research has proved that even the movement of our little finger can produce vibrations in the space which rise upto the stars and return to the place of their origin. The vibrations caused by the movement of our finger are subtle. Similarly our thoughts which are woven out of subtle matter, travel to the highest point in this cosmos and then return to the place of their origin. I have known the power of power of thought and I believe in the philosophy of thought. To be clear and precise I give you certain examples.

You sleep and enter the state of dreams you become furious in your dream and you beat somebody. In such a state your body and hands move as if you are actually beating somebody. If you experience a frightful dream, your tongue is moved and you cry You enjoy sex with a lady in your dream and your semen gets discharged. Now you think over this enigma. Actually there was none whom you were beating in your dream nor there was any lady, but simply your involuntary thoughts and Sanskars moved your hand and also led to the discharge of your semen. Now you can well imagine, that if your un-known Sanskaras and involuntary thoughts can have this effect upon your body during the state of your dreaming, how much disastrous would be the effects of our voluntary, determined and willed thoughts charged with jealousy, greed and selfishness. At present we are passing through the very

critical times. Opposite ranks in all walks of life i.e. social, political and religious have led us far away from the goal of peace and harmony. I have been doing my best for the last 30 years in awakening the politieal leaders, religious preachers and social reformers through stage and writings. Even today, I give a clarion call that our present system of election is a sweet poison for the nation. It sows the seed of hatred, enmity and jealousy. It is leading to the disintegration of the nation rather than to integration. The present set-up of our democracy must change to "auto-democracy". Hence my teachings to each and all are, "Be pure in thought, word and action, hate none but love all. As we so, so shall you reap. Sow, love and justice, reap the same and live a happy and peaceful life.

As regards "NIRV N" i e. release from the cycle of birth and death), I have to say, that it does exist. You must have seen some children are born as blind, some others lose their eye sight or suffer attack of some disease and get crippled in early days of childhood. What a sin such children could have committed while in womb or in early days of their childhood ? It proves that they have suffered in this life for their past sins and deeds. Those who do not believe in the philosophy of re-birth and the philosophy of deed must conclude that the creator of this world is very cruel and he is indifferent to the human sufferings. He creates the creatures including mankind according to his will and whim and awards punishments and rewards as per His will without caring for our good and bad actions.

It is said, that god created man in His own image,

correct. But, what about a man ? He too creates his proginies in his own image. We indulge in sex, not for begetting children, but for enjoyment. Children are born simply as by-product of our sexual enjoyment. Do we hnow, what fate will they meet in their lives ? Moreover we expect that they (offshoots of our uncontrolled passions) should remain obedient to us keep themselves in discip ine and tread the path of virtue, This can never, never happen. Let any leader, Guru and social reformer do his utmost to reform such a geueration. Fault is not with th generation, but with the generators. The youth all over the world is indisciplined, disobedient and un-controlled. Winds of un-rest blow all over the country, nay ; all over the world. Who is to be blamed ? The Youth, no. Those whom they are born and those who educate and control them. I, In my own way, do my best to show the right path to those who come to me. To married Couples I always advise. "PROCREATE FOR THE SAKE OF PROCREATION. DO NOT PRODUCE UN CALLED FOR CHILDREN. WOMEN ARE NOT A TOOL FOR SEXUAL ENJOYMENT, BUT THEY ARE LIFE PARTNERS."

HOW T ACHIEVE T E FINAL RELEASE

In the west, scientists have made experiments on many dying men. They placed the dying men on very very sensitive scales and applied a special paint on the screen fixep on the opposite side of the scales. It was observed that while a man was breathing his last, the screen showed signs of something very subtle leaving

the body of the dying man. They even noticed the colour of that subtle element. Simultaneously, it was noticed that the weight of the body had decreased and the decrease of weight ranged between 5 to 25 grams in different such cases. This decrease of weight in body proves that the subtle element (call it "self" or soul of man). Which left the body had weight. Now, a thing, having weight cannot go beyond the gravitational sphere of earth. Under the gravitational force it is bound to be attracted by and remain with in the magnetic field of this earth. Why the soul or self has weight ? Because the dying man had attachment with the gross matter in one form or the other. So I say that you may do inward-practice (abhyas) all your life time, give alms, help others and do not noble deeds, but if at the time of death, your "self" while leaving the body does not achieve the state of weightlessness by giving up attachment for gross matter in any form, let it be known for certain that you would not stand released from the cycle of transmigration. You may have been a great devotee you may have been listening to the Unbreakable sound (Shabada) and dwelling in the stage of light with in. They all stand no guarantee for your release from the bond of birth and death.

Now, let me define the attachment for the gross matter. It covers your attachment with your property, father, mother, wife, children, Rama who was born in Ayodhya, Krishna who was born at Mathura and your Guru whom you believe to be a human being. If a form of any of these appears or manifests to a dying man, then think not that the dying man has crossed

the sphere of gravirational pull of earth or attained release from "KAL" and "MAYA". The entire Hindu Philosophy is based upon this principle of attachment and detachment. A follower of Sanatan Dharma is advised to renounce the world and become a Sanyasi in the last phase of his life. The sure, unmistakable and scientific way to attain "MOKSHA" is that a seekers must attain perfect detachment from body, mind and soul. A bird sans wings to have flight in the sky. The soul must shed away its attachment for everything on this earth to reach its sublime-Abode. This is the core of Sant-Matt, Radhaswami Matt and Sanatan-Dharma and this the teaching I impart to those who come to me for this purpose otherwise I alwvys tell the art of happy living in this world.

THE LAST WORD ON THE SUBJECT

Now, at this age of 94 years, I live a life of peace and happiness. While knowing I lead my life as if I know not. The entire creation is a game of one Supreme Power. Whatever we see feel or know is a mere play of that Supreme-Power Whatever happens good or bad or beyond these both is within His Order (law). By His will man can achieve the state of NIRVAN and under His will man must continue to remain in the cycle of tr nsmigration. To His Will I bow, To Him and to Him alone I surrender. This is the last stage of my life long research. His will is supreme. Whatever happens, happens for the good. This belief gives me peaee. By virtue of the knowledge (gained through my life long research) I remain detached and do not identify myself with the trinity i.e. body,

mind and soul. I always keep myself busy (work is must in life) with selfless service to mankind in various ways. Inwardly I remain conscious of my "SELF" and resigned (SHARNAGTAM) to the Supreme-Lord, beyond the regions of the gross, subtle and causal.

People all over the world pray to God and worship Him in different ways. But my research proves that people in general worship their own minds, i.e. God of their own mental conception and not the primal-Lord the "MAINSTAY". Any one willing to worship the "PRIMAL LORD" must as a pre-requisite live in the company of a "REALISED GURU", to gain perfect understanding for, the worship of the Supreme-Lord. What prayers can be offered to Him, who is beyond the conception of mind? However, he is present in every being in the form of "SURAT". So if you wish to worship Him, then the best worship of Him would be the service to humanity. However, you cannot do service to each and every one on this earth The best and easy method to worship the lord is to serve those, who are attached to you by nature. You should serve without any attachment and selfishness, your parents, wife, children, brothers, sisters, friends, relatives and neighbours. If you offer prayers and worship God evening and morning but cherish jealousy, prejudice and enmity against your family members and relatives, you are not a true devotee of God, but a great hypocrite. You do not worship God, but your own little ego. Such a worship would lead you nowhere.

Nature values the thought and desire of each one of us according to the intensity of our desire and thought. According to my desire of spreading "The

Truth throughout the universe to the best of my ability and circumstances", nature has helped me. Dr. I C. Sharma, a professor of Philosophy in America (at present) had a vision in 1959 in which he saw a man who told him that he would attain release in this very birth. In 1965 when I was giving a general Satsang at Birla-Mandir Delhi, Dr. I C. Sharma came to me and told that it was "I" who appeared to him in his vision in 1959 A D. He besought my blessings as he was proceeding to America on a teaching assignment. I gave him one rupee note with the writings "Luck to I. C. Sharma". And I gave him one monthly magazine "BE MAN" with the suggestion that he should speak to Americans on my writings. He acted upon my advice. During the course of his lectures in America my form started to appear before him and said to the Americans t at Faqir Dayal is standing before me and he guides me. The result was that my form started to to appear to many Americans as well. During the last eight years Americans in cooperation with Dr. I.C. Sharma have arranged for my four visits to America. I have visited England twice and Canada once. In all these countries I have expressed my views without any reservations in order to fulfil my promise to my preceptor Hazur Maharishi Shiv Brat Lal Ji Maharaj. I claim not that whatever I have said or say is final. I have no claim upon the Manavta Mandir nor I have any attachment with it. I have willed that none of my blood shall ever become a trustee of this Trust of Manavta Mandir, not to speak of anything else. However, they may serve the Mandir like other followers. I shall carry on the duty assigned to me by Data Dayal Ji Maharaj till the last moment of my life.

Science, Religion and Philosophy

By

His Holiness

Hazur Manav Dayal Ji Maharaj

Dr. I. C. Sharma

Since science, religion, and philosophy are human disciplines, human pursuits. involving human goals and discoveries, the source of their origin must lie in the nature of man, in his mental and psychological constitution. Although religion emerged prior to philosophy and science, the three have coexisted in some form from the beginning, generated by man's threefold nature of knowing, feeling, and willing, or, curiosity, the urge to love, and the will to control nature. Science, the disinterested search for truth about natural phenomena is really nothing but man's attempt to satisfy his own curiosity. Man's religion, the acceptance of the love of God and of fellow human beings, issues from the emotional aspect of man. Finally, philosophy aims at understanding the ultimate truth about the cosmos and the purpose of human life. It is man's intellectual effort to effect a relationship between knowledge and feeling, science and religion, and understand their

interpendence.

The three disciplines are not mutually exclusive, just as the activities of knowing, feeling, and willing in man's behaviour are not isolated. Animals may largely apprehend their environment through sensation, but man's cognition is reflective, his sensations are meaningful, conveying objectivity and significant pattern. Man's feelings go beyond immediate pleasure and pain ; they are complex wholes of feeling, instincts, and emotions, all organized by reflection into a pattern called sentiment. Lastly, man's actions are not merely impulsive tendencies, but more often than not, a cool, considered, voluntary act of will, which essentially involves reflection and reasoning.

All lower animals have awareness, affection, and strivings in a rudimentary form, but these activities, without reflection, remain undeveloped. And so, animals have not invented a science, adopted a religion or propounded a philosophy, for man's reflection, love, and volition, involve a subtler understanding. They originate from the soul or self which is the core of man. All knowledge that carries the idea of unity and organization, all feeling that urges man to love rather than hate, and all action which impels him to manifest good will, owe their function to that source. The powers of soul or self, unlimited by time and space, psychoanalysts like Jung have called the *unconscious*. The word *unconscious* is a negative term, but it implies the positive content of that unlimited psyche, of which consciousness is just one infinitesimal part. We justly admire consciousness because it is through that function that we know, feel, and will, but we should not

forget that the psyche is wider than than these three manifestations of the soul.

The fact is emphasized because the unity in all human experience is due to the self-conscious subjectiveness of man, termed ego, or personality in its conscious aspect. But beyond that, beyond even the subconscious, there is a coordinating unity, whose source merely includes ego as one of its products. Ego reflects that true self, or soul, which gives unity to the aspect of psyche beyond the conscious. When the individual ego establishes connection with the soul, even the involuntary functions of breathing and circulation come under its control, as we see in the highest level of meditation, *Samadhi*.

Samadhi, translated only approximately as trance, literally means unification or balance of all physical, mental, and intellectual experiences and activities of the self, through subjugating them to the pure self or soul. This description of *Samadhi* is the result of thousands of years of research by the yogins of India. The yoga system, formulating the systematic technique of attaining *Samadhi*, was elaborated by the great sage Patanjali, in the eighth century, B.C., though its origin is certainly much older. Edgar Cayce arrived at the same conclusions as the great sages of ancient India, which have been confirmed by thousands of others since. His readings are convincing, not simply because predictions have subsequently been corroborated, but because they represent a direct contact with the Cosmic Consciousness and eternal Truth.

This brief definition of the word *Samadhi*, the highest stage of meditation, is based entirely on the

study of Indian philosophy, the yoga system and the personal observations and demonstrations of living yogins. Edgar Cayce, describing meditations in his readings, said it is the "attuning of the mental body and the physical body to its spiritual source.....For ye must learn to meditate—just as ye have learned to walk, to talk, to do any of the physical attributes of thy mind as compared to the relationships with the facts, the attitudes, the conditions, the envirous of thy daily surroundings" (281—41).[1]

This quotation indicates that truth, being one, cannot be distorted, and the conclusions of different researchers will ultimately agree. The apparent unity of human personality suggests that man's three limited characteristics, knowledge, feeling, and volition, are originally associated with the source of unity of both the conscious and unconscious self, and that although consciously we consider the three separately, they are actually interrelated and even simultaneous It is impossible to remove all thought from feeling and emotion, or all sentiment from thinking and volition. Man as a self-conscious personality experiences all three processes as one whole, and when in the state of *Samadhi*, the soul is at its highest level, the trinity of the experience is fused into one complex whole. This state transcends all triads of time, space and causality ; past, present and future ; knower, known, and knowledge ; reason, faith, and intuition. Hence the trinity of science,

1. Numbers appearing after Cayce material designate documents on file in the Association for Research and Enlightenment (ARE) Library, Virginia Beach, Virginia.

religion, and philosophy is no less a "unity in diversity" than the trinities of reason, faith and intuition, birth, evolution (reincarnation), and resurrection (life eternal); Father, Son and Holy Ghost. All of these, in a very deep sense, represent and manifest the same unconflicting truth, with God as the source. It is the fallacy of segregating truths which has been responsible for confusion and chaos in modern man.

Without the concept of universal, consistent truth, man becomes a fractured personality. The scientist says that the truth of the laboratory is different from that of the church The minister affirms that God is irrelevant to scientific findings and that such truth differs from that of the Bible. Strangely enough, this anomalous acceptance of the theory of double truth—spiritual and secular—existing like parallel lines without interconnection, is held by many Western intellectuals even today, despite the fact that the latest researches in science have confirmed the orderly force in biological evolution, mental expansion, and intellectual growth in the universe

As an example, we know that the sun is the center of our solar system with the planets revolving around it, forming our largest known physical pattern. The smallest form we know, the atom, is a perfect replica of the solar system. Both have a nucleus as the center of gravity, with the atom's electrons moving like planets around it. The repetition of the pattern in interstellar systems in the stamp of an intelligent guiding source of order and uuiformity.

Research in other physical sciences equally points to a harmony where every particularized organ of the

human body works for the whole, and even a simple injury to the organism recruits the process of healing in every part of the body. Henri Bergson has given countless examples from the biological world to prove that every part of the living organism works for the system so purposively that one is forced to believe in the existence of a creative intelligence, or elan vital behind the evolution of life. These discoveries, plus the success of science in controlling nature through knowledge of immutable laws, and all evidence testifying to uniformity in causation, reaffirm that the originator of the dynamic, creative cosmos is not any caprice, but a purposeful and intelligent, eternal Being.

Edgar Cayce referred to the thread of unity which runs through the world when he spoke of the emotional disturbances of his physically suffering patients. He referred to a patient as an "entity", affected by planets, past lives, previously acquired skills, at the same time that he diagnosed upset stomachs and damaged kidneys. Science aims at understanding the laws of causation, claiming that predictions in nature are logically possible as a result of the interconnection of forces If this is true, Edgar Cayce did not deviate from the scientific method in citing the influence of the past and of planets on man. He simply demonstrated the inseparable tie between science and religion.

Sophisticated scientists and historians of science write of religion's beginning in superstition, blind faith, and mythology. They allege that religion started with fear, with ghosts and spirits, animism and ancestor worship. Primitive man, they say, worshipping sun

and moon, serpent and lion, was ignorant of the roundness of the earth, its rotation and revolution, and they proudly picture Copernicus, Galileo, and Newton redeeming man from the nonsense preached by religious dogmatists. They stamp the ancient religions, which date back to the centuries before Greek philosophy, as self-deception and illusion, not realizing that, in fact, the scientist of today is merely corroborating truths discovered by men of religion at least four thousand years ago. In spite of the antiquity of the evidence, the truth is that it speaks of the motion and revolution, not only of the earth, but also of the sun, solar system, and galactic center, and gives names to the orbits of these systems. Let us examine then, this oldest theory of the universe.

This five-sectional-branch theory of the universe was based on the concept of *Prajapati*, the Supreme Master of Creation. Some Western scholars of Vedic literature have translated *Prajapati* as a personal God, the Supreme Being of the Hindu religion. There is no doubt that creation, preservation, and destruction of the cosmos, in one basic reality called Brahman, have been accepted as the three functions of God or *Prajapati* but to interpret this Creator as a God having personality is absolutely incorrect. The term *Deva*, which is added to *Prajapati* in the Vedic literature is derived from the root *Div*, as in "divine," to shine or to illumine the sky. Thus, *Deva* means a shining entity or a force of nature which has light as its basis, as when Jesus says that he is "the light of the world." The Vedic literature gives the adjective, *Deva*, to all natural forces and entities, and since all these are dependent

on the Supreme Force of *Prajapati Deva*, all of them share in the *Devata*, divinity.

Prajapati, the presiding deified force, is the core of all evolutionary existence. The Vedic literature states "*Prajapati* remains in the center of everything ; it is immanent, unborn and yet, sprouts forth in a multifarious manner ; the wise know the secret of this core of *Prajapati* and also know that all the levels of creation in the universe are founded on it."

The same writing theorizes that earth, moon, sun, galactic center, and cosmic center are the five sections of one branch of the universe that is ours, and that numberless such universes exist in the cosmos. The earth (*Prithavi Devata*) revolves around the sun (*Surya Devata*) on its revolving orbit (*Kranti Devata*). Secondly the moon (*Chandra Devata*) revolves aronnd the earth on its orbit (*Daksha Vritta*). The sun, the third section of the universe, is also not stationary, but it revolves around another center accompanied by its planets. This center, around which our solar system and many other systems are revolving, is the familiar *Vishnu*, galactic center, preserver of life, sun of suns. The galactic center further moves around the cosmic center *Prajapati*, the creative force.

In more modern language, the ultimate source and ground of creation is one infinite Being indestructible, dynamic and immanent, unaffected by the evolution of the universe. As the dynamic agent, it becomes the Creator of the universe ; as the immanent Being it becomes the personal, omnipotent God (the Father of the Bible), the object of worship and communion.

This cosmolog of the Vedas is in turn related to

its philosophy of the nature of man, social systems, and ethics. Man is a miniature universe. Or, metaphysically speaking, "Man is the image of God," and as such, parallels the universe, the body representing the earth element and the mind, or consciousness of emotion, representing the moon. The third element, more subtle than mind, is the rational a pect of human personali)y, or *buddhi* This intellect is the manifestation of the sun, solar energy. It is only beyond these three systems of the microcosm that man's soul reflects both the galactic and cosmic centers of the universe.

Man's *Atman*, or soul, according to the Vedas, combines the eternal *Ayvaya*, P*urusha*, and *Mahan Atm n*, or the invisible pure spirit and man's impersonal unconscious self. Pure *Atman* reflects the original immanent manifestation of God, the cosmic center, and from it originates all levels of reality. *Mahan Atman*, or the great self, is man's galactic center, co n-prised of unconscious tendencies inherited from seven proceeding generations and transmitted "unto the seventh generations." The composite of these aspects is tne *J va Atman*, soul, or as Edgar Cayce appropriately titled It, "the entity".

It is difficult for modern scientists to accept the fact that their carefully corroborated knowledge of the systems of the universe were known to ancient India But actually, the theories were even further related to human psychology and ethics, which declared that man's healthy integration is based on a balanced development of the body, mind, intellect, and soul. Man's corporeal being is developed through A*rtha*, the

economic value ; *Karma*, the satisfaction of desires, particularly sexual. through conjugal love, is necessary for normal emotional growth ; D*harma*, the ethical value, or duty, renders service to one's fellowman and nourishes the human intellect. Lastly, having recognized the soul as the center of human personality, the Vedic psychology suggests that for spiritual development man must hold *Moksha*, eternal spiritual liberation, as the highest goal of life.

Yoga, which is known to the Western world as primarily a physical discipline, was originally taught as the method of obtaining this *Moksha*. It is the system of bodily and mental exercise used in attuning to one's own innermost self, and is as essential for a healthy and normal life as is food for the body, the mind, and the intellect We will see that the Cayce readings adapt the disciplines of yoga and S*amadhi*, or meditation, for the identical purposes of the Vedic teaching.

In modern psychology, intellect and mind are not separated. If a threefold nature of personality is tentatively accepted, we have body, mind and soul as the three major aspects of the individual. The physical man and the universe is the concern of science ; mind or understanding is the occupation of philosophy, and the soul is normally supposed to be the business of religion. Howevever, it is evident that no isolation of the three is even possible. The three must cooperate do justice to the nature of complex human personality.

Although the approaches and techniques may differ, the truth of science, the truth of religion, and the truth of philosophy are one, and the goal must be the same. Scientists do not disagree about the nature of

the atom. They do not quarrel about the effects of radioactivity. Truth in science is not the monopoly of any one nation, race, or culture.

But God, 'the common ground of all religions, frequently has been monopolized by a view of religion, narrowed by nationality, race, or culture. In a objective consideration, if God is omniscient, can He by limited to one language ? If omnipotent, can He not manifest Himself in the form most desired and understood by the devotee ? If omnipresent, is He not equally present in the temple, mosque and church ?

At the core of every religion, the unity of the spiritual element in man and oneness of God as the ground of all existence have been evidenced by highly developed souls like Edgar Cayce. They have experienced God as the final and Supreme Truth, universal and infinite, an all-pervading power and an revealing Being. Because there are infinite manifestations of that power through infinite media, the human approach to the apprehension of God is diverse. The scientist "seeks God" through analysis of the physical world, finding uniformity in nature, but also an infinitely receding frontier of knowledge, which ultimately leads him to the threshold of man's spiritual nature.

The spirit or soul is the unity from which the diversities of the physical, biological, and social aspects of man derive, It is the innermost nature, whose essence is the subjectivity of the agent and experiencer. Human matter is the outermost nature, objective in the sense of being passive and extended in time and space. It is not an agent, but the object of an agent, which is the

soul. Matter is not the knower, but what which is known ; not the experiencer, but that which is experienced.

Man's suderiority over the other beings lies in the fact that he is conscious of his subjectiveness. He knows that he is the knower. He is self-conscious. Non-living matter is presumed to be unconscious, with consciousness only dormant. In the subconscious activity of plant life, consciousness dreams. Only at the animal level does consciousness become manifest, experiencing perceptual, emotional, and instinctual behaviour. But in man, consciousness reaches the level of self-consciousness, making him a free agent. He has freedom of will, the power to choose between alternatives through the exercise of reason. It is man's self-conscious soul which makes him different from the nature of other creation.

Religion differs from science because its emphasis is on the soul. Yet science is also search for the soul, a search directed from the outside inward. Science would not exist if it had not been activated by the self-consciousness of the soul. Nor would religion exist without that same self-conscious transcendental nature of man.

Religion aims at the understanding of the inner nature, just as science aims at understanding the outer nature. Religion experiments with the soul in the spiritual laboratory, as does science in its physical laboratory. Science arrives at the universal knowledge of matter, which transcends geographical, cultural, and racial boundaries. Religion, which aims at the universal

knowledge of the soul, transcends all boundaries of sect, denomination, and church. Thus science and religion have a similar stimulation and approach to truth, with a similar goal of catholicity. There is no rational antagonism between the two disciplines. On the contrary [as Edgar Cayce confirmed in the broad scope of his readings] science and religion are interdependent and interrelated. The truth is one. the function is one, the goal is one.

Monthly Message

OF

H. H. Param Sant
Hazur Manav Dayal Ji Maharaj
Dr. I. C. Sharma

My dearest Satsangees,

Radhaswami and Blessings of the Supreme Compassionate Lord.

I had posted information to you about the events of the month of June, 1986 in my last monthly message. The main event concerning the month of July worth mentioning was the Foundation Stone-laying Ceremony of the Manavta Public School and Manavta Mandir in Jaipur, Rajasthan, and the holding of general spiritual discourse on the auspicious day of Guru Purnima, (the Full-Moon-day dedicated to the Perfect Master) in Manavta Mandir, Hoshiarpur. We proceeded from Hoshiarpur to Delhi on the 5th July by road. The 6th July was to be a rest-day. However, scores of dedicated satsangis came to meet me for their guidance. We proceeded for Jaipur in the early morning of the 7th Jaly, 1986. Even though the date for the Foundation-Stone-Laying Ceremony was

13th July, yet we arrived there on the 7th afternoon. It is, therefore, necessary to explain to reason for this early arrival.

It is a matter of pleasure in this context to tell you that the the context to tell you that the 10th of July 1986 was a day when the auspicious marriage ceremony of the son of my dearest pupil, Nagar-Seth, Mr. Moti Chand Golechha, was to be celebrated. Normally I cannot get time to attend the marriage ceremonies even of my nearest relatives It may be mentioned here that I could not participate in the engagement ceremony of my older son D . Arun Kumar Jetly on the 18th of January 1983, because I had proceeded to Andhra Pradesh on my Spring Satsang tour on the 16th January. However, I could not avoid my attendance at the marriage ceremony of the son of my dearest student Moti Chand.

I had decided to attend this marriage two months month earlier. Moti Chand, besides being my academic student, is also an ideal satsangi today. As a matter of fact, I have thousands of academic pupils all over the world and all of them are dear to me. However, the personality of Moti Chand is an outstanding and ideal one for others. Not only this, all the events from his childhood to maturity are indicative of the fact that the adoption of an optimistic attitude and practice of good-will can actualize the great potentialities of man and lift him up to the heights of success.

In 1955-56 I was teaching philosophy in the Maharaja College, Jaipur. I have never accepted tutorial work in my own subject The reason is that

deficiency in the subject which I teach would mean deficiency in my teachiny. As a matter of fact none of my students ever felt the necessity of being tutored in Philosophy. By the Grace of God the examination results in my subject were usually cent-per-cent. Therefore, whenever I accepted tution, it was in English which has been my favourit subject. Mr. Moti Chand Golechha engaged me as a tutor for about eight months in his B.A. final examination.

Moti Chand belongs to a noted Golechha family of Jaipur. His grandfather, as the head of a joint familywas a famous jeweller One of the uncles of Moti Chand had been adopted by a millionaire kin. During those days the financial condition of his family was straitened On account of a generous outlook Moti Chand felt that the tuition fee paid to me was not sufficient. One day he said to me, "Sir, if I pass the B.A examination, I will present you a new Ralaigh bicycle." I simply laughed, patted him and said, "My dear son, this is not at all necessary."

The result of B.A. examination was announced and Moti Chand was in the list of successful candidates. I had absolutely forgotten about his promice. After some days, one evening when it was raining, I was sitting in the verandah of my house in Bapu Nagar, Jaipur. A tonga suddenly stopped in front of my house. I saw Moti Chand lifting a new bicacle from the tonga. came to me, placed the new Ralaigh bicycle before me and said, "Guru Ji, this is a token of my respects to your which I promised to you." Hearing these words and gazing at his baby-like face, tears came from my

eyes. His eyes indicated extreme love and regards. I could conclude that on account of the financial circumstances of his family, Moti Chand must have borrowed money for fulfilling his promise. Concealing my feelings in my mind, I spontaneously said to Moti Chand, "My dear son, you will be a multi-millionaire some day." Moti Chand touched my feet and went away.

Twelve years later some body informed me in Udaipur that Moti Chand had established an industry in Beawer city and had attained a good financial status. After four years from that time I came to know that Moti Chand attained the status of the biggest industrialist of Beawer city and was designated as "Nagar Seth."

That very year I was travelling one day with my friend professor Massy of the English Deptt. of Udaipur University and two other lecturers one of whom was my Ex student and lecturer in Philosophy at that time. Her name was Dr. Girija Vyas who is now the member of the Legislative Assembly in Rajasthan.

When we were passing through Ajmer, it was late in the evening Every one was feeling hungry. Since I do not eat at the restaurants and hotels, my companions also went without food. I said to them, "let us go via Beawar. One of my old students is a leading industrialist living there. Possibly we may have dinner at his home, even though I have n't seen him for the last sixteen years, yet I am quite sure that he will recognize me."

This happened to pass about one and a half miles before the city of Beawer. We noticed a sign-board

saying "GOLECHHA HOUSE" on a palatial building to our left. I stopped the car outside the main gate. There was some darkness at that time. Moti Chand was relaxing in a chair in his lawn facing she verandah of his mansion. As soon as I entered the gate, I called out "Moti Chand !" Moti pounced upon his chair, approached me and bowed down his head on my feet as a mark of respect. This most affectio ate behaviour of him brought tears in my eyes. I embraced him. All my companions were surprized to note that the leading industrialist of Beawer had fallen at the feet of his teacher inspite of a long lapse of sixteen years. In brief, I want to say that Moti Chand gave us a sumptuous dinner benefitting the hospitality of Rajasthani culture. After this event I visited Moti Chand many times in Beawer and every time he served me as an ideal host.

When I took over the spiritual responsibility after after succeeding Param Dayal Ji Maharaj and went on tour of Rajasthan, Moti Chand organized a huge public meeting for the delivery of my spiritual discourses. All the members of his family are now satsangis of Manavta. I am proud of the fact that Moti Chand is not only a successful industrialist, but his character as a human being is an ideal for others to follow. Now he is not only my academic pupil but also a devoted spiritual aspirent. Most appreciable in his character is that he is practicing the principles of Manavta and also engaging himself in social service. Not only do I hope, but an confident that his industry and business will flourish more and more, and he is destined to be

a multi-billionaire. Since the purpose of his earning wealth is benevolence and social service, he is helping society financially through a registered "Trust". That is why I was urged to attend the auspicious marriage of the worthy son of Moti Chand Golechha at Jaipur and bless the bride-groom.

On 8th July we went to Bhilwara from Jaipur. On account of the opening ceremony of the new house of Shri Tej Mani Gupta the grand-son of Krishak Ji Maharaj almost all the satsangis attended this function and satsang on the 9th July. The same evening we arrived in Ajmer. After resting a while we proceeded to Jaipur and arrived there the same night.

We attended the marriage ceremony of the son of Mr. Moti Chand Golechha on the 10th July 1986. On this occasion I met my dear old student Mr Surendra Singh who had been my pupil in Maharajas College in 1954 and about whom I have said a lot in many satsangs. Surendra Singh was known to be a trouble-maker as a student whereas his benaviour in my class was most moral and respectful. On account of being very close to me, Surendra Singh became studious and also got Law degree from Rajasthan. Today he is a noted agriculturist and land-lord. He appears on Television to give talks for the improvement of agriculture.

On the 13th July the foundation ceremony of Manavta Public School was held The site of the school is just 2 km., away from the Rajasthan University on the main rhad. After celebrating this function on a grand scale we left for Delhi from Jaipur on 14th July and arrived in Delhi the same evening. After a night-halt

at Delhi we arrived in Hoshiarpur od 15th July.

Another noteworthy event before my departure on a foreign tour on the 25th July, was the celebration of Guru Purnima on the 20th July 1986. Since I had to deliver a special satsang on this occasion, the number of satsangis who attended this function was the largest in the past twenty years. The entire programme of this function was Video taped. This can be viewed by other centres.

A grand farewell function was organized in Salwan Public School, Old Rajendra Nagar, New Delhi on the 23rd July. Acharya Shri Vijai Naresh Negi first delivered a lecture which has followed by my satsang. Mrs. Raj Salwan also particirated in the function. It is well known that the Salwan family is truly devoted to Param Dayal Ji Maharaj in His Mission. It is due to the co-operation and inspiration of Mr. S.D. Salwan that larger and larger number of Satsangs are now being organized in Delhi

We left for London at 3.15 A.M. on the 26th July by Thai Air Lines from Delhi and arrived in London at about 8 A.M Mr. Kishore Gupta, accompanied by his affectionate daughter Anjana, had arrived at the Air-port to receive us. He had to take us to Birmingham. However, Shri Rajiv Pandit of Hendon. London had also arrived on the Air-port to meet us. All of us went to the house of Mr Rajiv Pandit in two cars. After lunch and a short nap we proceeded to Birmingham at 5 P.M. The satsangis had already gathered in large numbers at the residence of Mr. Kishore Gupta 59, Trinity Road Birmingham. Three general satsangs

were held in the Gita Bhawan on the 26th, 27th and 28th July in connection with the Centenary Celebration of Param Sant Param Dayal Ji Maharaj

The satsangs were organized in the evening. In the morning of 27th and 28th July practical classes were also held in the training of Surat-Shabda Yoga. Besides the satsangs in the Gita Bhawan during these three days, one satsang was aleo organized at the residence of Mr. Bakshi Singh Sahdev and Mrs. Savitri Sahdev at 18, Maxted Road, New Oscott, Birmingham. It is important to note that Mr. Kishore Gupta is the Secretary of Gita Bhavan and Mr. Om Parkash is the President of the same organization. Both these persons were responsible for the organization of satsangs and Video taping of the programme. The older brother of Shri Kishore Gupta is Mr Jagdish Chandra Gupta who has always been active in arranging tour to England and who has been aided by Mr. Dasondha Singh and Mr. Harbans Lal. This time they organized and financed the dinner in the Gita Bhavan on the 27th July as a mark of respect to the Param Dayal Ji Maharaj. Km. Vina Gupta the daughter of Shri J. C. Gupta and Mrs. Usha Gupta, wife of Mr. Kishore Gupta, also co operated during these three days. All of these are deeply interested in the propagation of "Manavta Movement". An International Societ of Humanism is very likely to be established very shortly. We spent 28th evening, 29th and 30th morning with Dr. K. M. Khurana and his wife Mrs. Kalpana Khurana in Manchester. Mr. Kishore Gupta brought us to Birmingham in the evening of the 30th July. The same evening we proceeded to Hanslow in London where a satsang was delivered by me at the

residence of Mr. Gurmit Singh. We left for New York from London at 1 P.M. on the 31st July by the flight of TWA.

Mrs. Jhelma Carter had been waiting for us since morning at the New York Airport. She took us to her residence at Baltimor by her car. Even though we had arrived in New York by 4 P.M., yet it took us three hours to start from the Airport. As a result of this we arrived in Baltimor at 1 A.M. in the mid-night, and were extremely tired Next morning we arrived at the residence of Dr. Robert Mce Wen and Mrs. Judy Mce Wen in Orlington, Virginia at 8-30 A.M. A spirltual discourse and workshop were organized there there in a big hall from 9 A.M. to 3 P.M. Similarly another seminar was held at the same place from 9 to 3 P:M. next day. We were busy in Orlington upto 4th August and flew to Cleaveland the same night. Our older son Dr. Arun Jetly along with his wife Manju came to receive us at Cleaveland Airport at about 10 P.M. After staying in Cleaveland upto 5th August we proceeded to Greenbay on the 6th morning by Republic Air Lines. There is a difference of one hour between the time of Cleaveland and Greenbay which is one hour behind. We had to stop over in Chicago for two hours, for a change of aeroplane. During that period I had a new experience. As a matter of fact in the public places and in the houses bath-rooms and toilets are very neat and clean. This time when I went to the toilet room in Chicago Air-port, I could not see the button of the tap of water. I did not know how to start the water running. The

moment I stood in front of the tap, the water started running automatically and se it stopped after I left the place I am writing all this for the information of the readers of India so that that they come to know that the west has made the matterial life happy and fruitful by turning its Surat or spiritual energy towards the development of material amenities of life. They have tried to make their life easier and happier. I had also told you earlier that the new cars in U.S.A. are so computerized that they begin to spe k when we forget to tie the belts, or to close the doors. In this connection I would like to mention two more facts.

After staying for five days at the residence of Shri Ajit Kumar in Greenbay Wisconsin we flew to Blumington, Indiana to stay with our younger son Dr. Priya Darshi Jetly. In this city we saw a new dimension of automation in a huge factory. One of the longest electrical Liftman OTIS Co. of the World. OTIS is situated in Blumington. This factory supplies lifts to India and to the whole world. You can notice the word "OTIS" in most of the electrical lifts in hotels and the government buildings everywhere. This factory is completely computerized Suppose you want a lift of a particular size for a particular building ; you can go to the OTIS factory, tell the Sales Manager your requirement, size, weight etc. of the lift, and the sales Manager will push some buttons in your presence and within two hours the lift desired by you would be ready for delivery. Such automatic machines and compu ers are being used in every industry. In this context I want to tell you that in California State the machines

which compute the prices of various items of purchase in a goods store, have taken a new dimension which is worth mentioning here. I had told you earlier that the preparing their computerized bill of twenty different goods purchased by you has become so easy to handle that a sales-girl would only pass the item over a light and the price of that item would appear on the Bill which gets the print and comes out as a role of paper. This system is fool-proof and the price appearing on the bill is most accurate. Now, another improvement has been made in this system. This time I noticed that whenever the sales-girl passed a particular item over a lighted bulb, the machine would begin to speak, "four cans of tomato soup-cost-one dollar." In this way every item purchased at different price is announced so that the buyer can know the price of every item he is purchasing. The purpose of mentioning all these facts is that the use of automatic machines is, firstly, that it saves time and energy of the sales person, and, secondly, that the buyer cannot be cheated. The people who have not experienced these facilities of the West, are under an illusion that the West is indulging in luxuries and has no spiritual thirst But my experience is that falsehood back-bitting and envying others do not exist in the West After such observations Param Dayal Ji Maharaj had written to me in 1968, "America has reached the climex of materialism. Now it is sick of this. Therefore the Americans will mak fast progress in spiritualism. When a person tries his body completely by working hard in the day time, he fully enjoys the bliss of sound sleep at night. This is what is

going to happen in America. Having attained the Zenith of material progress it will have a great longing for spiritual upliftment. Therefore, besides teaching philosophy to Americans, you should also give them Spiritual Education.''

I continued to obey the orders of Param Dayal Ji Maharaj during His life-time After he left for the Ultimate Abode I have been sharing my spiritualism in India and abroad in various spiritual discourses. I experienced the bliss of self-realization in this fulfillment of my duty. About three or four satsangs were held in Greenbay and were attended by the followers of different religions belonging to Indian origine and Americans. The satsang delivered at the time of the opening ceremony of the house of Mr. Ajit Kumar was a special event which would be interesting for you to read. Mr. Ajit Kumar's whole family was very closely attached to Param Dayal Ji Maharaj and is now attached to me with the same devotion.

All their children have come in contact with Param Dayal Ji Maharaj. They are obedient and followers of the principles of Sant Mat. Ajai Kumar, the oldest son of Mr. Ajit Kumar, had completed his Engineering course about two years ago and was employed in a big power house in Mill Wankee city which is about hundred miles away from Greenbay. There Ajai came in contact with an American girl Holly who has a very sweet nature and is very literal in her religions views. This girl is a qualified registered nurse. The parents of Ajai have also accepted this girl. Consequently their engagement ceremony was also to be performed

at the occasion of the opening ceremony of the new house. Miss Holly was dressed in Indian Sari and had also put on Indian ornaments. She looked purely Indian girl. I blessed the couple, gave them blessed sweets, and performed the engagement rites. All the satsangis were very happy to attend this engagement ceremony. I renamed Holiy as Hema. On the 11th August we left Greenbay and arrived at Indianapolis Airport at 5-15 P.M. Our younger son Dr. Priya Darshi Jetly lived in Blumington in the state of Indiana where he has obtained his Ph.D. degree in Philosophy. He came to receive me at the Airport and took us to Blumington in his car.

We stayed with him for four days. There I met some Prof. of Indiana University where Dr. Priya Darshi has studied Ph. D. and where he is teaching now. A spiritual discourse on meditation was organized in Blumington on the 13th August at 8 P.M. under the auspicious of a spiritual organization called Common Wealth. The lady organizer of this institution had informed the interested persons about this satsang only two days ago. Even then the entire hall of the institution was filled with the audience. In this discourse I explained the nature of Yoga of Light and Sound and also gave them the technique of practicing it. The lady organizer of this centre appreciatrd my discourse and expressed the desire that next time a meditation camp should be organized. About sixty persons benefited from the meditation that night and all of them experienced Light.

Next day we visited different places of Blumington

with my son Priya Darshi. That very day we visited OTIS factory which manufacturers electric lifts as mentioned above Such automatic factories save time and energy for the benefit of man and new inventions are being done through the automatic systems This is the age of computers. Even India is being computerised. The computers have much better and more efficient memory than human brain. There has been animmence progress in technology by the invention of computers particularly in the West Hospitals are eqnipped with computers which help in diagnosing diseases accurately in a very short time. It is hopped that computerization would reach almost every village within next fifty years. This would no doubt give us material facilities, but too much of machenization can be harmful so far as humanism is concetned. It is possible that humans may be deprived of living Love and their behaviour might turn out to be machenical like machines. The only way to ward off these difficulties of the age of technology is the propogation of Humanism. On the 15th of August we started from Blumington in the afternoon for Deton, Ohio in Priya Darshi's new car.

In Deton we went to the house of Dr. Henry Fronista. We call him Herry out of love. Whenever Param Dayal Ji Maharaj visited me in Virginia, Herry would come to pay respects to Him from over thousand miles because he was very keen to be benefitted by the spiritual discourses of the greatest saint of our time. Herry travelled by Air along with his family for this purpose. When I was about to return to India after

the American tour of Psram Dayal Ji Maharaj in 1972, and was preparing to leave, Dr. Herry Fronista came all the way from Deton to meet me and said, "I have come here only to meet you and help you in your preparation to leave for India. Herry s wife and all his five daughters love our w ole family. Herry is one of the most successful doctors of Deton and he has unflinching faith in Param Dayal Ji Maharaj and myself. In fact Herry's family is a real Manavta family which spread over the world from India to America, to England and to West Indies, and in which Love and Truth mainly dominate. If any satsangi ever visits America, he or she can stay with Herry's family and would feel that he is in the company of his kith and kin. Many of my Indian friends have enjoyed the hospitality of Herry's family on their visits to America. Vot only this, Herry loves India so much on account of his association with my self and Param Dayal Ji Maharaj that he has employed Indian husband and wife as doctors in his Clinic on very lucrative terms.

On account of this love for India and our family relations Herry telephoned me arround the end of February 1975 and he was intending to come to India. I received this telephone in Udaipur. After two days he called me from Bombay and said, "Myself and my wife Silvia have come to India to meet you." The very next day we received Herry and Silvia at Udaipur Airport. His stay in Udaipur was very pleasant. There I took him to Mandaleshwar Shri Murli Manohar the Head of Nimbark seat and the Chief Mahant of Sthal Temple in Udaipur. Shri Murli Manohar Sharma

is a very liberal and learned priest I will write about him later on for your information. It is sufficient to state here that whenever spiritually inelined American group have visited India, they have been deeply impressed by Mahant Murli Manohar Sharma. After four days myself, Bhagya, Herry and Silvia came to Jaipur. Here they stayed for three days and accompanied us to Delhi after mee-ing the Governor of Rajasthan who was my friend. A day before Herry was to depart for U.S.A. he expressed his desire to meet Param Dayal Ji Maharaj and said, "I would be very lucky if I can have the privilege to get the vision of Param Dayal Ji Maharaj. "At that time I did not know the where aboutr of Param Dayal Ji Maharaj. I spontaneously replied addressing Herry and Silvia, "If you are lucky Param Dayal Ji Maharaj would miraculously appear to fulfill your desire." I thought that I should inquire about the programme of Param Dayal Ji Maharaj from Mr. Nand Lal Sachdev who lived very near the house of my brother-in-law where we all were staying. At about 6-30 in the evening we stopped our taxy at the residence of Mr. Nand Lal for this purpose. He was not at home. I was informed that he had accompanied Param Dayal Ji Maharaj to the Railway Station to bid Him Good-bye because Param Dayal Ji Maharaj was to leave for Hoshiarpur the same night by Kashmir Mail. It was the habit of Param Dayal Ji Maharaj to reach the Railway Station an hour or so earlier than the arrival of the train. We immediately arrived Delhi Junction station. The Hoshiarpur bogy had been attached to the Kashmir Mail. Param Dayal Ji

Maharaj was sleeping in the Ist Class compartment. As soon as myself, Herry and Silvia entered the compartment, Shri Gopal Dass, His personal attendent cried allowed, "His Holiness is sleeping. You all should get out." I said to him lovingly, "Mr. Gopal Dass, he is Dr. Herry from U.S.A. whom Param Dayal Ji Maharaj knows very well." The moment I said this, Maharaj Ji woke up and sat down on his seat inspite of his ill health saying, "My dearest Herry, how are you here ?" Herry and Siliva fell at the feet of the Master. Herry said, "We have come to Delhi only for getting your Blessings and vision." Herry and Silvia had always cherished this meeting with Param Dayal Ji Maharaj. After that whenever Maharaj Ji came to America, the whole family of Herry would come to meet him wherever he was. In 1978 Param Dayal Ji Maharaj also visited Herry in Deton, Ohio.

We arrived in Cleavland on the 16th August. My son Dr Arun Jetly and his wife Manju had organized a farewell party on 17th August and invited about a hundred guests and it was a kind of marriage anniversary but it turned out to be a spiritual discourse as well. On this occasion all our relations from America and friends as well as most important persons of Cleavland including professors, engineers and lawyers attended this farewell party.

The events which occured after this function during my American tour would be given to you in my next monthly message.

With reference to the virtue of Austerity I had stated last time that the Austerity of speech urges us not to use irritating language. On the contrary, we should speak in gentle and sweet words. Whatever we utter should be in the interest of others. The principle of good-will also urges ue to do the same thing. Will or intention is a mental act which is expressed through language and executed in a physical act, Everyone knows that our action should be such that it does not harm any one physically. I have always emphasized

that mothers should not beat their children physically. Psychological research has established that the children who are physically abused by mothers, instead of being changed in their behaviour after gentle instructions, begin to hate womenkind when they grow up. Not only this, such children also are backward in studies. As I have already stated, physical wound is healed after some days, but the mental harm caused by bitter language takes longer time to heal and its effects are dangerous also speech arises out of our mind, therefore it is the mirror of man's mind. Bhartri Hari, who is known as Raja Gopi Chand Bhartri Hari, says that speech is the most befitted ornament of man. A person with gentle speech will naturally be gentle in his actions and will not harm any one. Similarly, he will not intend harm to anybody mentally. Speech is more subtle then the physical action. Therefore its good or bad effect shall also be longer lasting. The truth expressed in sweet words is liked by everyone but harshly expressed truth effects the mind adversely and it harms both the speaker and the hearer. Therefore the gentle language which is sweet and beneficial, is the highest Austerity.

The speech is expressed through writing and speaking. The language that we read is also called (Swaadhyaya) self-study. The language which is called the Austerity of speech because of reading is not found in ordinary books. It is to be found in those books and pictures which have been written by the saints and which are the butter churned out of their spiritual experience. The best self-study is the study of the biography of the saints or listening to their spiritual discourses. Satsang—spiritual discourse—therefore, is a living study. I shall continue the discussion of this self-study and the statements of the saints in the next monthly message.

With these words I send you my best wishes and sincerely wish that you all should enjoy physical health, mental joy and spiritual Bliss of the Supreme Being.

Yours in Faqir
Manav.

WORLD NEWS COMMENTS

During the past year the over-all situation of the world was indicative of aggression, terrorism, religious wars in the Middle East, and the acts of violence against the government in various countries of South Africa and in America. The problem of apartheid in the South Africa is still posing threat. The minority while government is mercilessly suppressing the majority Black ruthlessly. This wantonness, violence and internacine wars in the name of religion and politics need to be checked. In case the smoldering war-fare in various parts of the world continues, there is the possibility of the Third World War which would be the last war on the face of the Earth, because it would mean the wholesale destruction of the life on this planet within twelve minutes after the nuclear explosions.

Neither the victor, nor the victim, neither the aggresser, nor the aggressed would be able to live. In face of these circumstances the only solution appears to be that a true Humanism should be inculcated and practiced by all the citizens of the world irrespective of their caste, creed, color, religion, nationality and political affiliation. Man is first of all man and latter on a Hindu, a Muslim, a Christian, a Buddhist, a Sikh or a Jain etc. All religions preach the Love of God and Love of man who is actually a replica of God on

Earth. The practice of these two principles can bring about harmony, mutual love, good-will and international understanding and thereby bring about a lasting peace on Earth.

All the articles and discourses published in "Manav Mandir" Journal aim at bringing about a true Humanism which is easy to practice and which does not require a man to give up his own religions belief, nationality or political ideology.

The very name of the Journal as "Manav Mandir" indicates that man himself is a temple of God. If he keeps this temple neat and clean by practicising love and good-will, he can bring about Peace and Harmony in his family, society, nation and the world.

—Manav Dayal

IMPORTANT NOTICE

In connection with the Centenary Celebrations of Param Sant Param Dayal Ji Maharaj during the whole year 1986. His Holiness Hazur Manav Dayal Ji Maharaj has been extremely busy undertaking spiritual tours all over India and abroad, delivering satsangs and establishing new centres. The demand of satsangs and spiritual discourses is increasing everyday. The correspondence work for the benefit of satsangis and aspirants has risen to unimaginable heights in comparison to the past years. On account of these reasons His Holiness may not be able to visit all the centres in India and abroad every year.

Many satsangis of Andhra Pradesh have complained that His Holiness Hazur Manav Dayal Ji Maharaj has not graced their centres with his visit since long. As a matter of fact, His Holiness, following the footsteps of Param Dayal Ji Maharaj, never disappoints anyone.

It is, therefore, requested that all such centres of Andhra Pradesh, Madhya Pradesh, Maharashtra, Uttar Pradesh etc. who want to invite His Holiness Hazur Manav Dayal Ji Maharaj for his satsang during the

Basant (Spring) tour of His Holiness (from January '87 to March '87), should send their invitation letters through their organizers directly to the undersigned so as to reach him on or before the 25th December 1986. Tour programme of His Holiness to various centres will be finalised only after receiving such invitations from the centres within the date given above.

S. L. Sethi
General Secretary
Manavta Mandir,
Hoshiarpur (Pb.)

प्रार्थना

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
परम सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये घर पद धामी
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर ।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार ।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम ।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

86

Regd. No. 26265/74 DECEMBER 10th 1986
MANAV MANDIR NWHSP— 7

ADDRESS

To 12

72. Sh. Anand Rao Ji
H. No. 1-3-17 Kalasi Gudda
Near Laxmi Narain Mandir
Secunderabad A. P.

Phone : 2028

From :

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR-146001

Shiv Dev Rao Press Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)